

यौवन, सौन्दर्य्य और प्रेम

[भारतीय दाम्पत्य जीवन की महत्वपूर्ण समस्याओं पर
कुछ गंभीर विचार]

लेखक
ठाकुर श्रीनाथसिंह

प्रकाशक
साहित्य-मन्दिर, दारागंज, प्रयाग ।

प्रथम संस्करण } जनवरी सं० १९३० { सादी प्रति का १॥)
सजिल्द का २)

प्रकाशक—
साहित्य-मन्दिर, दारागंज,
प्रयाग ।

सिटी एजंट
श्री पं० सेवकराम नागर
चौक, इलाहाबाद

मुद्रक—
विश्वम्भरनाथ वाजपेयी,
ओंकार प्रेस, प्रयाग ।

भूमिका

सुन्दरी स्त्री से विवाह करना सब चाहते हैं। उसके दीर्घ यौवन की सब कामना करते हैं। उसके प्रेम के सब प्यासे रहते हैं। यह बात पुरुषों को भी मालूम है, स्त्रियों को भी। इसीलिए पुरुष की आँखें निरन्तर युवती और सुन्दरी प्रेमिका की खोज में रहती हैं और स्त्री अपने यौवन, सौन्दर्य्य और प्रेम के दायरे का विस्तार करती रहती है, ताकि जो पुरुष उसके भीतर आ चुका है, वह बाहर न निकल जाय। जो स्त्रियाँ ऐसा नहीं करती हैं, उन्हें करना चाहिए। जो नहीं जानती हैं, उन्हें सीखना चाहिए। क्योंकि भारतवर्ष में स्त्रियाँ प्रेम करने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं। यदि उनका पति उनके प्रेम का क़िला ढहाकर बाहर निकल जाय तो वे अपने उस फूटे खँडहर में अन्य पुरुष को दो बातें करने के लिए भी नहीं बुला सकतीं।

युवा, सुन्दर और प्रेमी पुरुष किसी स्त्री से इन्हीं बातों की इच्छा कर सकता है। परन्तु असंयम के कारण रोग-ग्रसित, कुरूप और निर्दयी पुरुष भी इन्हीं बातों की इच्छा करता है। स्त्री जाति के पराधीन होने के कारण किसी न किसी स्त्री को इस निर्दयी पुरुष का शिकार बनना ही पड़ता है। क्या यह उचित नहीं है कि पुरुष जब निर्दयता का व्यवहार बराबर करता रहे तब कोई स्त्री उसे क्यों प्यार करे? इस विषय को बढ़ाने के लिए यहाँ स्थान नहीं है, समय भी नहीं है। हाँ, मैं यह ज़रूर कहूँगा कि जब सब प्रकार के पुरुष—सुन्दर भी और कुरूप भी, प्रेमी भी और निर्मोही भी—स्त्री को यौवन, सौन्दर्य्य और प्रेममय देखना

चाहते हैं तब जिन मार्गों पर चलने से स्त्री में इन गुणों की वृद्धि हो सकती है उन मार्गों पर उन्हें चलने क्यों नहीं दिया जाता ?

वे मार्ग हैं, स्वाधीनता, स्वास्थ्य और सेवा के भाव। यौवन का स्वाधीनता से बड़ा सम्बन्ध है। जिस पुरुष या स्त्री में स्वाधीनता के भाव नहीं जाग्रत होते, उसमें मानो यौवन का अभाव है। उसकी आयु चाहे जो हो। स्त्री को पूर्ण युवती बनने के लिए उसे पर्दे से बाहर निकालना होगा, उसे उसके मन का कार्य-क्षेत्र देना होगा। उसे उसकी इच्छा के अनुसार प्रेम, विवाह आदि सब कुछ करने का अवसर देना होगा। जो स्त्री घर से बाहर निकलकर बाज़ार तक भी अकेले जाने का साहस नहीं कर सकती, उसका यौवन कोई यौवन नहीं है। उस यौवन पर जो पुरुष आकर्षित होता है, वह जीवित पुरुष नहीं कहा जा सकता, उसकी साँस भले ही चलती हो! यौवन का जो सम्बन्ध स्वाधीनता से है वही सम्बन्ध सौन्दर्य का स्वास्थ्य से है। जो स्त्री अस्वस्थ है उसे सुन्दरी कहनेवाला मूर्ख ही हो सकता है। स्वास्थ्य के लिए स्त्रियों में व्यायाम, नृत्य, सङ्गीत, सैर आदि की रुचि का उत्पन्न होना आवश्यक है। उनके घूमने और व्यायाम आदि करने का प्रबन्ध होना चाहिए। प्रेम की वृद्धि के लिए उनमें अपने सुख के बजाय औरों के सुख की वृद्धि का ध्यान होना चाहिए। यही भाव सेवा का भाव है। उन्हें समाज और राष्ट्र की सेवा करनी चाहिए। श्रीमती सरोजनी नायडू को देखिए। वे स्वाधीन-चेता हैं, भारत की सेवा में रात-दिन लगी रहती हैं। इसी सेवा के कारण उनके स्वास्थ्य को हानि पहुँचे तो पहुँचे, नहीं तो वे अपने स्वास्थ्य का सदा ध्यान रखती हैं। इसलिए उनका यौवन, उनका सौन्दर्य्य और उनका प्रेम आज

अपनी सीमा नहीं रखता। इस वृद्धावस्था में भी, वे भारत की यौवन, सौन्दर्य और प्रेममयी देवी बनी हैं।

इस पुस्तक में इन्हीं तीनों बातों पर विचार किया गया है। इसका दृष्टिकोण राष्ट्रीय है। राष्ट्र की उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि उसके नर-नारी यौवन, सौन्दर्य्य और प्रेम के भाण्डार हों। यही इस पुस्तक के लिखे जाने का उद्देश्य है। किसी अपवित्र भावना से प्रेरित होकर जो लोग इस पुस्तक को पढ़ेंगे, मुझे भय है, उन्हें निराश होना पड़ेगा।

इस पुस्तक के लिए मैं किसी प्रकार की मौलिकता का दावा नहीं करता। योरप और अमरीका के बड़े-बड़े विद्वानों के अँगरेज़ी मासिकपत्रों में प्रकाशित लेख ही इस पुस्तक के आधार हैं। पर इससे यह न समझ लेना चाहिए कि मैंने अँगरेज़ी लेखों का अनुवाद अपने हिन्दी पाठकों के सामने उपस्थित कर दिया है। मैंने दो-एक को छोड़कर और किसी लेख का भावानुवाद भी नहीं किया। उन लेखों के पढ़ने के पश्चात् मेरे हृदय में जो भाव उत्पन्न हुए हैं, उन्हीं को मैंने लेख-बद्ध किया है। जो लोग इस प्रकार का साहित्य पढ़ने के लिए अँगरेज़ी मासिक पत्र देखना चाहें, उन्हें मैं निम्नलिखित मासिकपत्र देखने की सलाह दूँगाः—

गुड हाउसकीपिङ्ग, ओमेंस पेपर, गर्ल्स ओन मैगज़ीन, फ़िज़िकल कलचर, पियर्सन मैगज़ीन, और माई मैगज़ीन। इनके अतिरिक्त और भी अनेक अँगरेज़ी मासिकपत्रों से मेरे ये विचार बने हैं। पर खेद है कि उनका नाम मुझे इस समय याद नहीं।

इन लेखों को मैंने कल्पित नामों से, अबसे चार पाँच वर्ष पूर्व, एक स्त्रीपाठ्य पत्रिका में लिखा था। कुछ के नाम ये हैं—

'एक नवविवाहिता वधू', कुसुमकुमारीदेवी 'कली', श्यामा बाई, लक्ष्मीकान्त वर्मा। 'एक नवविवाहिता वधू' और कुसुमकुमारी देवी 'कली'—इन दो नामों से ज्यादा लेख लिखे गये थे और ये लेख जनता को कितने पसन्द आये थे, इस का अनुमान इसी एक बात से किया जा सकता है कि अनेक सम्पादक, कवि और लेखक इन कल्पित व्यक्तियों से पत्र-व्यवहार करने और मिलने के लिए उन दिनों बराबर उद्योग करते रहते थे। इन समस्त हताश प्रेमियों के सन्तोष के लिए मैं आज प्रथम वार अपने इन नामों को प्रकट कर रहा हूँ। मैं अपने नाम से इन लेखों को लिखता तो शायद कोई उस समय इन लेखों को पढ़ता भी नहीं, इसीलिए मैंने ये कल्पित नाम धारण किये थे।

इन लेखों को पुस्तक रूप में आने का सम्पूर्ण श्रेय पंडित भगवतीप्रसाद वाजपेयीजी को है। लेखों का क्रम भी वाजपेयीजी ने ही निश्चय किया है और पुस्तक को सब दोषों से रहित बनाने में उन्होंने कोई बात उठा नहीं रक्खी। इसके लिए मुझे विश्वास है, मेरे साथ, मेरे पाठक भी उन्हें धन्यवाद देंगे।

इलाहाबाद
१९—१२—२९

—श्रीनाथसिंह

विषय-सूची ।

यौवन, सौन्दर्य्य और प्रेम

यौवन, सौन्दर्य और प्रेम—तीनों स्वर्गीय पदार्थ हैं; और तीनों, जैसा कि लोग कहते हैं—विद्युत के समान अपनी छटा दिखाकर बहुत ही थोड़े समय में लुप्त हो जाते हैं। इन पंक्तियों में हम यही विचार करेंगे कि क्या वास्तव में ये अमूल्य वस्तुएँ क्षणिक हैं?

पश्चिमी देशों में अब से पचास वर्ष पूर्व की अपेक्षा आजकल यौवन अधिक टिकाऊ समझा जाता है। उस समय वहाँ—जैसा कि आजकल इस देशवालों का विचार है—पैंतिस वर्ष की स्त्री बुढ़िया समझी जाती थी। यही नहीं, यदि पैंतिस वर्ष के पश्चात् कोई स्त्री अपने यौवन और सौन्दर्य की रक्षा का आयोजन करती तो वह दुश्चरित्रा समझी जाती थी। पश्चिमी समाज में यह अन्धविश्वास यहाँ तक जड़ पकड़ गया था कि स्त्री का पैंतिसवाँ वर्ष उसके यौवन का अन्त और बुढ़ाई का आरम्भ समझा

जाने लगा था। किन्तु उसी समाज में अब कुछ और हवा बह रही है। अब वहाँ स्त्री, पैंतिस वर्ष की होने पर, अपने मनोमोहक यौवन के साम्राज्य में प्रवेश करती प्रतीत होती है। अर्थात् आजकल वहाँ स्त्री का पैंतिसवाँ वर्ष वह काल है जो उसके शिशु-शरीर पर यौवन का पानी चढ़ानेवाला कहा जा सकता है; और उसे इस अवस्था में भी पच्चीस से अधिक की नहीं मालूम होने देता।

यदि विचार करके देखा जाय तो पता चलेगा कि इसका कारण मानसिक भावों में परिवर्त्तन के सिवाय और कुछ नहीं है। सौन्दर्य की उपमा गन्ध-हीन पुष्प से दी जा सकती है। जिस प्रकार सुगन्ध पुष्प का मान बढ़ाती है, उसी प्रकार यौवन सौन्दर्य की वृद्धि करता है। पैंतिस वर्ष की स्त्री में सौन्दर्य ज्यों का त्यों रहता है। लोगों की धारणा के अनुसार केवल यौवन उसे छोड़ कर चला जाता है। यदि वह यौवन वापस बुला लिया जाय, या आ जाय, तो उसका सौन्दर्य फिर पहले ही सा चमक उठे। यौवन का आना या जाना, निस्सन्देह समय के हाथ में है; पर मन यदि चाहे तो उसे बहुत काल तक पकड़कर रख सकता है। समय स्त्री को इतनी जल्दी वृद्धा नहीं बनाता, जितनी यह भावना कि—"अब मैं बुढ़्ढी हो रही हूँ।"

सुरक्षित सौन्दर्य्य पैंतिस वर्ष की अवस्था में जितना चित्ताकर्षक हो जाता है उतना कभी नहीं होता; क्योंकि रूप-निधि पर उसी समय पूर्ण रूप से यौवन की मुहर लगती है।

यौवन प्रेम का प्यासा होता है। इसीलिये वह प्रेम के अभाव

में व्याकुल हो उठता है। कभी-कभी तो इसी के पीछे वह स्वयं भी बरबाद होता है और सौन्दर्य्य का भी नाश करता है। प्रेम तब तक पूर्ण नहीं कहा जा सकता, जब तक वह ज्योतिर्मय जीवन की ओर अग्रसर नहीं होता। यौवन उसे अन्धकार की ओर ले जाना चाहता है और बहुधा खींच भी ले जाता है। इसीलिये लोग चिल्लाते हैं:—

"चित्रकार मेरे अञ्चल में, लिख दो मेरा बालापन।
मेरे यौवन के प्याले में, भर दो मेरा बालापन।।"

सांसारिक वस्तुओं में हम उन्हीं को अधिक मूल्यवान समझते हैं जो हम से प्रति दिन दूर होती जा रही हैं। और यही कारण है कि ये तीनों वस्तुएँ हम को बहुत प्रिय हैं। इसीलिये हम निरन्तर इनकी रक्षा के लिये चिन्तित रहते हैं। इतना होते हुए भी कुछ लोग तीनों से हाथ धो बैठते हैं। कौन कहेगा कि ऐसी स्थिति में ये लोग मौत से भी अधिक भयंकर चीज़ का सामना नहीं करते?

यौवन बड़ी ही विचित्र वस्तु है। हम इसका मूल्य प्रायः तब समझते हैं जब यह बीत जाता है। तब हम हाथ मलते हैं और पछताते हैं। हम यह जानते हैं कि हमारे ही सैकड़ों छोटे-मोटे पागलपन के कामों ने हमारी यह दुर्दशा की है; परन्तु तब जानने से क्या हो सकता है? सुधार पैदा करने के लिये अब फिर से समय तो नहीं लौट सकता, इत्यादि बातें कहकर हम किसी प्रकार सन्तोष करते हैं। किन्तु नहीं, नीचे के उदाहरण से पता चलेगा कि हताश

से हताश मनुष्य भी उद्योग करके इस विषय में सफलीभूत हो सकता है।

इटली की एक महिला ने ४५ वर्ष की अवस्था में भी ये तीनों बातें फिर से प्राप्त करली थीं। जब उसका सारा सौन्दर्य्य क्षीण हो चला और लोग उससे घृणा करने लगे तो उसे पुनर्वार अपनी पूर्व स्थिति लाने की चिन्ता हुई। उसने सोचा—"जब मन शरीर पर शासन करता है तो वह उसमें परिवर्तन भी कर सकता है।" उसने तुरन्त अनुभव करना आरम्भ किया कि—"यौवन वापस आ गया है, सौन्दर्य्य आ रहा है और प्रेम आ जायगा।"

वह स्वीज़रलैंड में जाकर एक निर्जन स्थान में रहने लगी। स्नान और इसी प्रकार के सफ़ाई-सम्बन्धी अन्य उपचारों की भी उसने सहायता ली। उसने अपने उन भावों से घोर युद्ध आरम्भ कर दिया, जो उसे वृद्धा, सौन्दर्य्य-विहीन और प्रेम-शून्य मान चुके थे। धीरे-धीरे उसके विचार दृढ़ होने लगे। मनः शक्ति ने अपना काम किया और वह पुनः रूप-यौवन-सम्पन्ना प्रेमिकाओं में अपनी गणना कराने योग्य हो गई।

उसका कहना है कि यदि स्त्री मन को पूर्ण शक्ति से सम्पन्न कर ले, तो उसे यौवन इत्यादि की रक्षा के लिये और किसी प्रकार की सहायता की आवश्यकता नहीं है। उसका यह भी अनुभव है कि इस दशा में सादा भोजन करके और ज़हरीली तथा मादक वस्तुओं से परहेज रखना चाहिये।

वह शारीरिक और मानसिक सब प्रकार की पवित्रता रखती

थी। गन्दे उपन्यास या ऐसी ही अन्य किताबें नहीं पढ़ती थी और न ऐसे नाटक ही देखती थी जिनमें अच्छे भावों का अभाव होता था।

इस प्रकार जब उसे पूरा एक वर्ष बीत गया तो वह पुनः इटली लौट आई। अब जो उससे घृणा करते थे वे उसके प्रेम के भिखारी बनने लगे। उसने लोगों को अपने अनुभव से लाभ उठाने के लिये कहा। पहली बात जो उसने बताई, वह था—उत्तर की ओर सिर करके सोना*। क्योंकि उसका कहना था कि इस प्रकार सोने से विद्युद्धारा जो उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव की ओर बहती है, शरीर से होकर बहने लगती है, जिससे शरीर आरोग्य और स्वच्छ रहता है।

उसका तो यहाँ तक कहना था कि पूरा एक साल भी तन मन से इसी चिन्तन में लगा देना पुनः युवा बनने के लिये काफ़ी है। मनः शक्ति जितनी ही कम सम्पन्न होगी, उतनी ही देर लगेगी। इसके लिये निर्जन स्थान इसलिये चुना गया है कि मनुष्यों के बीच में रहने से मन की शान्ति अटूट नहीं रहने पाती।

---

*हमारे देश में लोग उत्तर की ओर सिर करके नहीं सोते। मुर्दों का सिर अवश्य उत्तर की ओर रहता है। सम्भव है, मरते मनुष्य का सिर इसीलिये उत्तर को किया जाता रहा हो कि उसके शरीर में विद्युद्धारा शक्ति पैदा करदे और बाद को लोग, चूँकि मुर्दों का सिर उत्तर की ओर रहता है, उधर सिर करके सोने से परहेज़ करने लगे हों। —लेखक।

मेरी राय में तो खोया हुआ यौवन, सौन्दर्य्य और प्रेम प्राप्त करने की अपेक्षा यह कहीं अधिक अच्छा है कि इनको खोने का अवसर ही न आने दिया जाय । इसके लिये भी वही उपाय उपयुक्त है ।

यदि हम अपने हृदयों से परिवर्तन के भाव निकाल दें, संयम और पवित्रता से रहें और मन को शक्ति-पूर्ण करलें तो निश्चय हम भी बहुत दिनोंतक यौवन और सौन्दर्य्य सुरक्षित रख सकते हैं । लेकिन होता यह है, कि लोग अपने विचारों से बुढ्ढे हो जाते हैं । यह विचार कि बुढ़ापा अनिवार्य्य है, उनकी मानसिक शक्ति को बजाय यौवन की रक्षा के उसको भागने के लिये प्रस्तुत कर देता है ।

मैं समस्त युवा स्त्री-पुरुषों से प्रार्थना करूँगा कि वे अपना यह विचार दृढ़ रक्खें कि वे जैसे हैं वैसे ही रहेंगे । उनका यौवन कोई उनसे छीन नहीं सकता । उनके सौन्दर्य्य की दिनों दिन वृद्धि हो रही है और प्रेम तो उनका जन्म-सिद्ध अधिकार है ।

निस्सन्देह प्रेम में बड़ी शक्ति है । यदि हममें यथार्थ प्रेम है तो हम स्वयं बड़े शक्तिमान हैं । प्रेम में आनन्द आता है, पीड़ा नहीं होती । जिस प्रेम में हम कष्ट का अनुभव करते , वह यथार्थ प्रेम नहीं हो सकता, वह ज़हर है । और वह ज़हर तभी दूर किया जा सकता है जब हमारा मन हमारे वश में हो ।

* * * *

यौवन की रक्षा करो। शरीर और मन में इसी से शक्ति का संचार होता है। यही ईश्वरी दान है और इसका सदुपयोग ही तुम्हारे लिये सुखकर होगा।

सौन्दर्य्य की वृद्धि करो। वह बहुत ही नाजुक चीज़ है। उसकी देखरेख में बड़ी सावधानी रक्खो।

प्रेम ही एक ऐसी स्वर्गीय और पुनीत वस्तु है जो हम मृत्यु लोक के निवासियों को विधाता ने दी है। इसे कदापि बेचो मत; और न किसी अन्य वस्तु से बदलो। इसकी पवित्रता का सदैव ध्यान रक्खो; क्योंकि यही वह वस्तु है जो हमको परम पिता परमात्मा के चरणों तक पहुँचाने में समर्थ है।

सौन्दर्य्य-साधन

एक विद्वान् का कहना है—"सुन्दरता का उद्गम-स्थान हृदय है और प्रत्येक अच्छा विचार शरीर को सजाता है।" यह सुन कर आप कह सकते हैं कि यदि सुन्दरता हृदय की वस्तु है तो इस बात से कोई मतलब नहीं कि हम अपने शरीर को कैसा रखते हैं? पर मैं कहूँगा कि शरीर के देख-भाल की बड़ी आवश्यकता है। यदि शीशा गन्दा और धब्बों से पूर्ण है तो उसके नीचे की तस्वीर अपनी वास्तविक सुन्दरता का ठीक-ठीक प्रदर्शन न कर सकेगी। यही बात मनुष्य-शरीर की है। यदि शरीर रोग और गन्दगी से ग्रसित,है तो हृदय; जो उसके अन्दर की तस्वीर है, अपने आपको कैसे प्रकट कर सकता है। इसलिए हमें यह देखना है कि हम अपने शरीर को क़िस प्रकार सुधारें कि हमारी आत्मा इसके अन्दर से अपने पूर्ण सौन्दर्य्य के साथ झलक उठे। यह साधारण काम नहीं है। हाँ ऐसा ज़रूर है कि किसी को अरुचिकर नहीं प्रतीत हो सकता।

शरीर का निखार स्वास्थ्य पर निर्भर है, या इसे यों कह सकते हैं कि बिना सुन्दरता के सच्चा स्वास्थ्य हो ही नहीं सकता। चमकती हुई आँखें, गुलाबी गाल, सुडौल अङ्ग, इन सब के द्वारा प्रकृति इस बात की सूचना देती है कि भीतर सब ठीक है। तब यह बात सिद्ध है कि जिससे स्वास्थ्य बिगड़ता है उसी से सौन्दर्य्य

भी बिगड़ता है और जिससे स्वास्थ्य और आयु की वृद्धि होती है उसी से सौन्दर्य्य की भी वृद्धि होती है।

मुलायम और शीशे के समान स्वच्छ त्वचा उन तमाम चीज़ों में से एक है जिसको प्राप्त करने के लिए प्रत्येक स्त्री के हृदय में महान अभिलाषा रहती है। सौभाग्य से इसका प्राप्त करना अपने हाथ में ही है। इसके लिए बहुत से कृत्रिम साधन भी पाश्चात्य देशों में फैल रहे हैं; पर इन साधनों से इच्छित फल प्राप्त होता कहीं नहीं देखा गया। शरीर के ऊपर जो त्वचा है उसका भीतर की त्वचा से बड़ा गहरा सम्बन्ध है। मैली जीभ, फीका स्वाद, सुस्त हाज़मा आदि बातों से त्वचा की कान्ति नष्ट होती है। पर यदि हम चाहें तो शीघ्र सीख सकते हैं कि इन सब का सुधार कैसे करना चाहिए। जब तक भीतरी हालतें सन्तोष-जनक न हों तब तक बाहरी प्रकृति अपना गुलाबी झण्डा नहीं फहरा सकती।

शरीर की सफ़ाई के लिए यह आवश्यक है कि शुद्ध जल ख़ूब काम में लाया जाय। खाना खाते समय बीच बीच में पानी पीना, प्रातःकाल सोकर उठने पर और शाम को सोने से पहले पानी पीना बड़ा लाभदायक होता है। पानी पीने से शरीर के भीतर के अङ्गों की सफ़ाई होती है। बाहरी सफ़ाई के लिए ख़ूब मल-मल कर स्नान करना चाहिए। प्रातःकाल ठण्ढे जल में स्नान करने से शरीर में ताज़गी आती है और ख़ून का दौरा बेग से होने लगता है। ठंढे जल से बार-बार मुँह धोने से भी बड़ा फ़ायदा होता है।

व्यायाम से भी सौन्दर्य्य में आश्चर्य-जनक वृद्धि होती है।

शरीर के सुडौल बनाने का इससे बढ़कर और दूसरा साधन नहीं है। सब से अच्छा व्यायाम सबेरे-शाम खुली जगह में टहलना है। प्रत्येक स्त्री को प्रतिदिन किसी बाग़ में या नदी के किनारे टहलने अवश्य जाना चाहिए। बाग़ में काम करना भी एक अच्छा व्यायाम है, पर बहुत देर तक झुककर काम करना ठीक नहीं।

प्रकृति-प्रेम भी सौन्दर्य्य-वर्द्धन में कम सहायक नहीं होता। खेतों, फूलों, बहती हुई नदियों और फुदकती हुई चिड़ियों से हृदय बहल जाता है और हृदय के बहलने का नतीजा यह होता है कि थकान या चिन्ता से मुर्झाया हुआ शरीर खिल उठता है। किसी कवि का यह कथन क्या ही सुन्दर है—"ऐ सरल बाले! चमकते हुए तारों की ओर देख, तेरी आँखें चमक उठेंगी। चन्द्रमा की ओर देख, तेरा मुँह चन्द्रमा के समान बन जायगा। खिले हुए फूलों की ओर देख, तेरे होठों पर मुसकान छा जायगी।" मतलब यह है कि यदि हम प्रकृति से प्रेम करें तो हमें प्राकृतिक सौन्दर्य्य भी प्राप्त हो सकता है।

यह हो ही नहीं सकता कि यदि हम चाहें तो सुन्दर न बन सकें, जब कि विधाता ने हमें सौन्दर्य्य के ही संसार में जन्म दिया है। ऋतुओं का बदलना, हरियाली और फूलों से पृथ्वी का शृङ्गार करना, पर्वत-मालाओं का अपने असंख्य झरनों के साथ भगवद्-भजन करना आदि बातें इसीलिए रची गई हैं कि मनुष्य के हृदय में सौन्दर्य्य के प्रति अगाध प्रेम पैदा हो जाय।

सुन्दरी बनने की प्रत्येक अभिलाषा स्त्री में स्वाभाविक है।

किन्तु ऐसी बहुत कम स्त्रियाँ हैं जिनकी यह अभिलाषा पूर्ण होती है। कितनी ही बहिनें हताश होकर कहती हैं—"हमको ईश्वर ने ही सुन्दरी नहीं बनाया। हम क्या करें? यह सब उसी की लीला है।" पर यह बात नहीं है, ईश्वर की सृष्टि सौन्दर्यमयी है। उसमें कुरूपता का कहीं स्थान ही नहीं है। हमने ऐसी बहुत सी स्त्रियाँ देखी हैं जिनको लोगों ने बहुत सुन्दर स्वीकार किया है किन्तु अन्त में वे ही बहुत कुरूप समझी गई हैं। इसके विपरीत हमने ऐसी भी स्त्रियाँ देखी हैं जिनको लोगों ने बहुत कुरूप समझा था; पर अन्त में वे ही परम सुन्दरी प्रमाणित हुईं।

बहुत दिनों की बात है एक सौन्दर्य्य-विज्ञान-वेत्ता अँगरेज़ने यह घोषित किया कि मैं कुरूप से कुरूप स्त्री को भी सुन्दर बना सकता हूँ। उसकी यह बात सुनकर हज़ारों की तादाद में स्त्रियाँ उसके पास एकत्र होने लगीं। उनमें से प्रायः सब परम सुन्दरी बन गईं। उसकी तरकीबें बड़ी आसान थीं। वह सुन्दरी बनने वाली महिलाओं को एक रम्य पहाड़ी पर ले जाता था और अधिकतर सबको खुली हवा में रखता था। सबको .खूब मल-मल कर स्नान करने के लिये कहता था। इस बात का भी ध्यान रखता था कि इसमें से कोई रोगी तो नहीं हैं। जो स्त्री रोगी होती थी उसको सबसे पहले आरोग्य बनाने का उपाय करता था। इसके अतिरिक्त वह नाट्यकार भी था। वह सबको एक जगह बैठा कर शरीर-संचालन की क्रिया दिखलाता था। कभी-कभी वह ऐसे ढँग से खड़ा होता था कि बड़ा सुन्दर मालूम होता था और

कभी ऐसे बेढंगे तौर से खड़ा होता था कि बड़ा भद्दा मालूम होता था। वह अपने मुख की नाना प्रकार की आकृतियाँ बना सकता था। कभी उसका चेहरा मुसकराता हुआ मालूम होता था और कभी रोता हुआ। यह सब दिखलाकर वह बताता था कि मनुष्य अपने शरीर की हरकतों द्वारा भी अपने को सुन्दर या कुरूप, जैसा चाहे, बना सकता है।

उस सौन्दर्य्य-विज्ञानवेत्ता अँगरेज़ की सब तरकीबें लिखने के लिये हमारे पास स्थान नहीं हैं और उसकी अधिकांश तरकीबें हमारे देश में सुलभ भी नहीं हैं। उसके मोटे-मोटे सिद्धान्त आपने समझ ही लिये होंगे। वे हैं—आरोग्य रहना, स्वच्छ रहना, प्रसन्न चित्त रहना, खुली हवा में रहना और शरीर को इस प्रकार रखना कि वह भद्दा न मालूम हो। स्वास्थ्य पर तो वह बहुत ही ज़ोर देता था। उसने यह सिद्ध कर दिया था कि बिना स्वास्थ्य के कोई स्त्री सुन्दर बन ही नहीं सकती। इसके लिये उसने एक बार एक परम सुन्दरी रमणी को एक कड़ा जुलाब दे दिया। दूसरे ही दिन वह सुन्दरी महिला अपना आधा सौन्दर्य्य गँवा बैठी! लोगों ने देखा कि असल में स्वास्थ्य ही सौन्दर्य्य है।

अच्छे सौन्दर्य्य के लिए अच्छी पाचन-क्रिया का होना नितान्त आवश्यक है। नारंगी, सेब और अंगूर पाचन-क्रिया को ठीक करते हैं; पर इनका इतना ही काम नहीं है। त्वचा पर जो कान्ति उबटन और पाउडर से नहीं आ सकती वह इन फलों के पेट में जाने से आती है। यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए कि

जिस भोजन में फलों की मात्रा जितनी ही अधिक होती है वह उतना ही सौन्दर्य-वर्द्धक होता है।

आत्म-संयम को भुला देना भी ठीक नहीं है। क्योंकि संयम को भुला देना सौन्दर्य्य का भुला देना कहा गया है। अपने कर्म्मों पर शासन करना काफ़ी नहीं है। विचारों को भी ख़ूब वश में रखना चाहिए। क्योंकि हमारे दिलों में जो भले या बुरे विचार पैदा होते हैं उन सब की छाया चेहरे पर पड़ती है और एक न एक दिन सारा संसार उन्हें पहचान लेता है। बिना प्रसन्नता के सौन्दर्य्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। और प्रसन्नता एक ऐसी वस्तु है जिसका मज़ा तब तक नहीं मिलता जब तक मनुष्य औरों को प्रसन्न करने का प्रयत्न नहीं करता। सौन्दर्य्य को जो सब से महान सहायता मिलती है वह चरित्र की सहायता है। कुरूपता के अन्धकार को चरित्र चन्द्रमा बनकर उसको और भी सुन्दर बना देता है।

कुछ बातें ऐसी भी हैं जिन पर सौन्दर्य्य की इच्छा रखनेवालों को विशेष ध्यान रखना चाहिए। वे नीचे दी जाती हैं :—

पेटेंट दवाइयों का सेवन मत करो। वे पाचन-क्रिया ख़राब कर देंगी और कोई लाभ न पहुँचाएँगी।

बहुत गहने मत पहनो। वे तुम्हें सुस्त और डरपोक बना देंगे।

प्रकृति ने तुम्हें जैसा रूप दिया है उसको बदलने का यत्न न करके उसे सौन्दर्य्य-पूर्ण करने का यत्न करो।

देर से भोजन मत करो। मिर्च और मिठाई बहुत मत खाओ।

प्रतिदिन अपने आपको एक बड़े दर्पण में देखो। पोशाक सदैव साफ़ रक्खो।

सुख और सम्पत्ति

एक महिला के विचार

जब मैंने लड़कपन में पहले पहल पढ़ा कि "हम धन से सुख नहीं ख़रीद सकते" तो मैंने इस वाक्य पर विश्वास कर लिया; क्योंकि मैं समझती थी कि किताब में जो लिखा है वह कभी झूठ नहीं हो सकता। फिर भी मेरे दिल में यह बात जमी ही रही कि मिठाई, गुड़ियाँ, डब्बे और सुइयाँ इत्यादि ख़रीदने के लिये धन की बड़ी आवश्यकता है। यदि धन नहीं होगा तो ये चीज़ें कहाँ से आयेंगी? मेरी समझ में इसी प्रकार के विचार जब मनुष्य के दिल में प्रौढ़ हो जाते हैं तो वह धन के लिये चिन्तित हो उठता है। देखा गया है कि जिन्हें सांसारिक वस्तुओं की या इन्द्रिय सुख-भोग की किञ्चित लालसा नहीं रहती वे भी इस विचार-जाल में फँस जाते हैं।

अमीर और ग़रीब दोनों प्रकार के मनुष्यों में अधिकांश ऐसे हैं जो अमीरी या ग़रीबी दो में से एक का भी ठीक-ठीक अर्थ नहीं समझते। उदाहरण के लिये एक बार मैंने ही अपनी माँ से कहा था—"मुझे चाहे एक वक्त खाने को मत दो, पर मुझे बालों में खोंसने के लिये गुलाब के ताज़े फूल ज़रूर और रोज़ मँगवा दिया करो। मैं बिना खाये रह सकती हूँ, पर बिना फूलों के मेरी गुज़र नहीं हो सकती।"

उस समय सुननेवाले मेरी शौक़ीनी की तारीफ़ कर सकते थे। पर इसका मतलब यही है कि मैं ग़रीबी का वास्तविक अर्थ नहीं समझती थी। जिस मनुष्य का पेट इतना ख़ाली नहीं हुआ कि वह रो दे, उसे पूर्ण ग़रीबी का अनुभव सहज में नहीं होता। इसी प्रकार वह मनुष्य, जो मज़दूरी करके अपनी जीविका चलाता है, उस आदमी को ग़रीब नहीं समझता, जिसका कारबार कुछ फैला हुआ होता है और जिसके नौकर-चाकर अधिक होते हैं। जिसे हम बाहर से बहुत अमीर समझते हैं, कभी-कभी वह एक साधारण मज़दूर को भी अपने से अच्छा समझता है। क्योंकि वह जानता रहता है कि उसे जो आर्थिक कष्ट है वह एक साधारण मज़दूर को भी नहीं है।

अमीरी और ग़रीबी के प्रश्न पर पूर्ण प्रकाश नहीं पड़ता। इसका कारण यही है कि इस संसार में अधिकांश मनुष्य ऐसे हैं जो धनवान् तो हो गये हैं पर धनी होने के उत्तरदायित्त्व का उन पर कुछ भी भार नहीं है। कर्त्तव्य को न समझनेवाले ऐसे मनुष्य अपने धनी होने का जो सुख अनुभव करते हैं वह बहुत ही दूषित सुख है। उनके .खुशी मनाने का ढंग इतना अप्राकृतिक हो गया है कि उसे देखकर हमारे हृदयों में ईर्षा का भाव उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकता।

साधारण मनुष्यों का संतोष बड़ा विलक्षण होता है। वे यह अनुभव नहीं कर पाते कि उन्हें गाड़ी तथा मोटर रखने, रेल के अव्वल दर्जे में चलने, और अच्छे कपड़े पहनने की जो अपार .खुशी है उसका कारण यही है कि उनके पड़ोसी को ये सुविधाएँ

प्राप्त नहीं हैं। जिस दिन उनके पड़ोसी को भी ये सुविधाएँ प्राप्त हो जायँगी उसी दिन से उनकी ख़ुशी घटने लगेगी। ऐसे धनी मनुष्य अपने इस भाव को दबाते नहीं। इसीलिये वह बढ़ते बढ़ते यहाँ तक बढ़ जाता है कि जो उसे देखता है उसी की निगाह में खटकने लगता है। जब ऐसे व्यक्ति अपने दरवाज़े से निकलकर मोटर या गाड़ी पर बैठते हैं तो अपने चेहरे को ऐसा बना लेते हैं और ऐसी कलुषित हँसी हँसते हैं कि पास-पड़ोस के लोगों पर उसका कुप्रभाव पड़े बिना नहीं रहता।

कदाचित् धनी लोगों के ऐसे ही व्यवहारों से खिन्न होकर अधिकांश लोग कहते हैं—"यदि मैं धनी होता तो ऐसा करता।" किन्तु धनी होने पर यह बात भूल जाती है। मैंने ऐसे बहुत से मनुष्य देखे हैं जिन्होंने धनी होने पर 'यह और वह' करने की प्रतिज्ञा की थी परन्तु धनी हो जाने पर सारी प्रतिज्ञाएँ हवा हो गयीं और उनकी चाल-ढाल वैसी ही हो गयी जैसी अन्य धनिकों की हुआ करती है। ऐसे मनुष्य मेरी उस सहेली की तरह हैं जिसने एक बार लाटरी छोड़ी और कहा—"यदि लाटरी मेरे नाम निकलेगी तो मैं स्त्रियों का एक विश्वविद्यालय बनवा दूँगी, अपने लिए तरह तरह की साड़ियाँ ख़रीदूँगी, और अपने पति को नौकरी से छुड़ाकर व्यवसाय में लगा दूँगी।" इत्तिफ़ाक से लाटरी उसी के नाम निकल आई। उसने क्या किया? सारा रुपया बैंक में जमा कर दिया। एक धोती तक न ख़रीदी गई। अन्त में उसने अपने पति से भी झगड़ा कर लिया। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि

लाटरी न निकलती तो मेरी सहेली जो कुछ कहती थी, उसका कुछ न कुछ अंश वह अवश्य पूर्ण करती। ख़ाली घड़े ही छलकते हैं, भरे घड़ों से एक बूँद भी पानी गिरना कठिन होता है।

लेकिन यदि आप मुझे आत्म-प्रशंसा करने के लिये क्षमा करें तो मैं कहूँगी कि एक बार मैं केवल ५) पाकर इतनी प्रसन्न हुई थी, जितनी अब पाँच करोड़ पाकर भी नहीं हो सकती। एक बार मैंने अपनी पाठशाला के सालाना जलसे के अवसर पर एक कविता सुनाई थी। उसी पर मुझे पाँच रुपया इनाम मिला था। वह इनाम मुझे महारानी विक्टोरिया के ताज से भी बढ़कर मालूम हुआ था। मैंने उसको पाठशाला से ही ख़र्च करना शुरू कर दिया और उसका अन्तिम पैसा मेरी माँ के हाथ में पहुँचा, जिसे पाकर वह बड़ी प्रसन्न हुई थी। किन्तु अब मुझे मालूम हुआ कि मुझे उस समय जो ख़ुशी हुई थी वह पाँच रुपया पाने या उसे आज़ादी से ख़र्च करने के कारण नहीं हुई थी। उसका कारण यह था कि लोग मुझे जहाँ देखते थे, वहीं कहते थे—"वह जा रही है! सुन्दर कविता लिखनेवाली लड़की वह जा रही है!!" अपनी यह प्रशंसा सुनकर मैं फूली नहीं समाती थी!

यदि आप सम्पत्ति पाकर कभी ख़ुश हुए हों तो उस स्थिति पर ग़ौर करें। आपको मालूम होगा कि आपकी ख़ुशी का वास्तविक कारण सम्पत्ति नहीं, सफलता रही होगी। सम्पत्ति से आदमी को आराम मिल सकता है, सुख नहीं। आराम और सुख में बड़ा अन्तर है। मेरे पड़ोस में एक बहुत ही धनाढय व्यक्ति

रहते हैं। उनके यहाँ किसी बात की कमी नहीं है, पर वे अपने को सुखी नहीं समझते। क्योंकि उनके मरने के बाद उनकी सम्पत्ति को भोगने के लिये कोई पुत्र नहीं है। उनकी पत्नी तो पुत्र के लिये इतनी चिन्तित हैं कि वे इसके लिये अपनी सारी सम्पत्ति दे सकती हैं।

मैं यह न कहूँगी कि धन से सुख मिलता ही नहीं। मेरे कहने का तात्पर्य्य यही है कि धन का यदि सदुपयोग न किया गया तो उससे सुख नहीं मिल सकता। यदि आपको धनी देखकर आपका पड़ोसी आपसे ईर्षा करने लगे तो धन का न होना ही अच्छा है। क्योंकि जब आप यह अनुभव करने लगेंगे कि आपका धनी होना आपके पड़ोसी के लिये असह्य है तो आपका चित्त शान्त नहीं रह सकता और यदि शान्ति ही नहीं हैं तो सुख कहाँ? इस लिये या तो धन पर लात मारिये या इतने नम्र बनिये कि आपकी चाल-ढाल किसी के हृदय में ईर्षा न उत्पन्न करे। क्योंकि इन दो के सिवाय ऐसी और कोई भी स्थिति नहीं है जो धनी होने पर आपको शान्ति प्रदान कर सके। और बिना शान्ति के सुख दुर्लभ है।

हम सुखी कैसे रह सकते हैं

संसार में कदाचित् ही कोई ऐसा पुरुष हो जिसे सुख की अभिलाषा न हो । दुःख भी मनुष्य इसीलिये झेलता है कि उसे आगे चलकर सुख प्राप्त हो । सुख क्या है ?—यहाँ हम यह नहीं बतलाना चाहते । क्योंकि इसे भिन्न भिन्न मनुष्य भिन्न भिन्न स्वरूप में मानते हैं । किसी को किसी में सुख है तो किसी को किसी में । अतः इसका कुछ ध्यान न कर, हम यहाँ यही लिखने का प्रयत्न करेंगे कि सुख किस प्रकार प्राप्त हो सकता है ।

सुख की लालसा रखनेवाले मनुष्य को यह जान लेना चाहिये कि जीवन क्या है और वह किस प्रकार व्यतीत किया जा सकता है । क्योंकि जीवन ही एक ऐसी वस्तु है जिसका सुख से घनिष्ट सम्बन्ध है । यदि जीवन ही नहीं, तो सुख कहाँ ? सुख का होना हमारी अवस्था पर नहीं, कुटुम्ब-परिवार पर नहीं, आय-व्यय पर भी नहीं, किन्तु हमारे जीवन पर ही निर्भर है ।

आंधी या भूडोल इत्यादि से इतने नगर या देश नष्ट नहीं हुए जितने मनुष्यों ने किये हैं । मौत से भी अधिक मनुष्य मनुष्य ने ही मारे हैं ।

दुःख दो प्रकार का होता है। एक वह, जो समय के हेर-फेर से आ पड़ता है और दूसरा वह जो मनुष्य स्वयं बैठे-बैठे उत्पन्न कर लिया करता है। दोनों प्रकार के दुःखों में से मनुष्य द्वारा उत्पन्न किया हुआ दुःख अधिक भयंकर होता है। हमारा सब से बड़ा शत्रु हमारे हृदय में ही है। ईश्वर बुराइयों को पैदा नहीं करता। उसने हमको सब प्रकार के कर्म करने की स्वतंत्रता दे रक्खी है। यदि हम इस प्रकृति-प्रदत्त स्वाधीनता का दुरुपयोग करें तो इसमें उसका दोष ही क्या है? मतलब यह कि यदि हम दुःखी हैं तो इसके उत्तरदायी भी हमीं हैं। बहुत से मनुष्य दूसरों को हानि पहुँचाने में ही लगे रहते हैं। बहुधा देखा गया है कि जवानी के जोश में आकर मनुष्य ने ऐसे ऐसे दुष्कार्य्य कर डाले हैं जिनके लिये उसको बुढ़ापे में रोना पड़ा है। जवानी में मनुष्य के कंधे पर एक प्रकार का जुआ रक्खा जाता है ज. आरम्भ में तो हलका और आनन्ददायक प्रतीत होता है किन्तु आगे चलकर ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है, भारी होता जाता है। जीवन में सबसे अँधेरी परछाईं वही है जो मनुष्य स्वयं अपना प्रकाश डालकर बनाता है। हम दुःखी किस प्रकार रहते हैं, कदाचित् यह बात सब को ज्ञात है। स्वार्थी होना, बात की बात में चिढ़ जाना, अपने को बहुत और दूसरे को कुछ न समझना, फ़िजूलख़र्ची करना, ऋण में दबे रहना, भोजन बहुत करना, पर शुद्ध वायु का सेवन बिलकुल न करना तथा व्यायाम न करना, इत्यादि ऐसी बातें हैं जो मनुष्य को सदैव दुःखी बनाये रहती है। इसी से हम जान

सकते हैं कि सुख क्या है और वह किस प्रकार प्राप्त हो सकता है।

यह किसी मनुष्य के लिये नहीं कहा जा सकता कि वह सुखी है। हाँ, यह कहा जा सकता है कि यदि वह चाहे तो सुखी हो सकता है, और यह कि यदि वह सुखी नहीं है तो यह उसी का दोष है। हममें से कितने ही मनुष्य ऐसे हैं जो प्राप्त सुख को भी बिना भोगे ही खो बैठते हैं; क्योंकि "यदि ऐसा होता"—सबसे दुःख पूर्ण बात यही है।

जीवन फूलों की शैय्या नहीं है। पर इसे लड़ाई का मैदान भी न होना चाहिये। अधिकांश लोग अपना जीवन ऐसी वस्तुओं की चिन्ता में बिता देते हैं जो उनको स्वप्न में भी प्राप्त नहीं हो सकतीं। ऐसी चिन्ता निष्प्रयोजन नहीं तो क्या है! कहीं-कहीं जिसे हम अवगुण कहते हैं, वह यथार्थ में गुण ही है जो दुरुपयोग के कारण अवगुण में परिणत हो गया है। एक पहिया भी उचित स्थान से हटने पर गाड़ी का चलना असम्भव कर देता है। इसी प्रकार हमारी जीवन-यात्रा में प्रकृति के साधारण से साधारण नियमों का भी उचित पालन न होने से बाधा पड़ सकती है। साहस अपनी सीमा से बाहर होते ही प्राण-घातक, प्रेम निर्बलतामय और परिमित-व्ययिता कृपणता हो जाती है। एक ही भोजन जो एक मनुष्य के लिये पथ्य है, दूसरे के लिये विष हो जाता है। यह कोई नहीं सिद्ध कर सकता कि प्राकृतिक नियमों का परिवर्तन अच्छे ही के लिये होता है। पूर्व की मेघ-वाहिनी हवा एक ही समय में

किसी के शरीर में पीड़ा उत्पन्न करती है और किसी को आमोद-प्रमोद के लिए फुसलाती है।

हम अपनी ग़लतियों से ही अपने ऊपर दुःख का पहाड़ गिरा लेते हैं। ये ग़लतियाँ भूल से उतनी नहीं होतीं, जितनी हम उनको जानबूझ कर करते हैं। यदि हम अपने कर्त्तव्य-पथ पर दृढ़ रहें तो हमसे इस प्रकार की एक भी ग़लती नहीं हो सकती। जो ग़लतियाँ भूल से हो जाती हैं उनके लिये हमको कुछ तर्क से काम लेना चाहिये। नहीं तो कार्यारम्भ से पहले माता, पिता या बड़ों की राय ले लेनी उचित है।

हम प्रति दिन कुछ न कुछ सीखते रहते हैं। किन्तु हमारी सर्वोच्च शिक्षा वही है जो हम स्वयं सीखते हैं। स्कूल छोड़ते ही शिक्षा समाप्त नहीं हो जाती। यथार्थ में स्कूल छोड़ने पर ही इसका आरम्भ होता है और जब तक मनुष्य जीता है, जारी रहती है। जीवन में सुख प्राप्त करने के लिये मानसिक व्यायाम की भी उतनी ही आवश्यकता है जितनी शारीरिक व्यायाम की।

मनुष्य ईश्वर के हाथों का खिलौना है, फिर भी उसकी आत्मा का ईश्वर से इतना लगाव है कि वह जो चाहे, कर सकता है; और जो चाहे बन सकता है। वह अपने भाग्य का निर्माण-कर्ता है, और यदि वह नहीं है, तो इसमें दोष भी उसी का है। शायद ही कोई ऐसा मनुष्य हो जो यह न जानता हो कि वह क्या है और उसे क्या करना है। क्योंकि आत्मा उसको सदैव, चाहे वह ध्यान दे

या न दे, अच्छे-बुरे का ध्यान कराती रहती है। इसी आत्मा की आज्ञा का पूर्ण पालन करते रहने से कुछ दिनों में मनुष्य मनुष्य बन जाता है। सर्वदा जीवन का सिद्धान्त यही रहना चाहिये कि हमको सबसे बड़ा मनुष्य बनना है, और तनमन से इसके लिये उद्योग करना चाहिये। पर किसी से ईर्षा न करनी चाहिये। अपने ही लिये प्रयत्न करनेवाला आदमी सुख प्राप्त कर सकता है, पर सच्चा सुख नहीं। सच्चा सुख तो परोकार—या यों कहिये, त्याग में ही है।

अवसर हाथ से न जाने देना चाहिये। सुख की सम्पूर्ण सामग्री प्राप्त रहने पर भी मनुष्य—यदि उसका हृदय दुःखी है—सुख-भोग नहीं कर सकता। यथार्थ में सुख का होना और न होना हृदय पर ही निर्भर है। एक प्रफुल्लित हृदय लाखों की रियासत से कहीं बढ़कर है। ईश्वर ने मनुष्य को क्या नहीं दिया? यदि थोड़ी देर तक प्रतिदिन यही सोचा जाय कि ईश्वर ने मनुष्य को क्या नहीं दिया, या यह कि ईश्वर ने हम को क्या क्या दिया है और बिना उसके हमारी क्या दशा होती, तो मेरी समझ में मनुष्य दुःख का अनुभव ही नहीं कर सकता।

ध्यान रखना चाहिये कि जो कुछ भी आनन्द प्राप्त है वह कल्पित नहीं, किन्तु यथार्थ है। हम बहुत से काम केवल इसलिये करते हैं कि उनमें सुख का होना बतलाया जाता है; और कदाचित्

हम उनसे घृणा भी करते, यदि उनके विषय में कुछ और बात कही जाती। बहुत से लोगों का यह विचार है कि निरन्तर आराम करने में ही सुख है। किन्तु यह बात ठीक नहीं है। आलसी आदमी कभी भी दुःख से छुटकारा नहीं पा सकता।

हम कहते हैं कि हम संसार के जीवों में सर्वश्रेष्ट हैं। किन्तु सुख-दुःख के प्रश्न में हमारी सर्वश्रेष्ठता कहाँ चली जाती है ? हम से अधिक सुखी तो पशु ही दिखाई देते हैं। प्रकृति के सौन्दर्य्य का पानकर हम कौन सा सुख प्राप्त नहीं कर सकते ? पर हम ऐसा नहीं करते। नाच गाने हमको बहुत पसन्द हैं; पर सृष्टि के सौन्दर्य्य की ओर हमारा ध्यान तक नहीं जाता। और यही कारण है कि हमारे हृदय में सुख की अपेक्षा दुःख का ही स्थान अधिक है। बात बात में हम सन्देह और भय करते हैं। कोई कार्य्य हम इसलिये आरम्भ नहीं करते कि उसके पूर्ण होने के लिये हमारे हृदय में सन्देह बना रहता है।

इँगलिश के प्रसिद्ध कवि Cowper का कहना है :—

The path of sorrow, and that path alone,
Leads to the land where sorrow is unknown.

अर्थात् दुःख का मार्ग ही एक ऐसा मार्ग है जो उस स्थान तक जाता है जहाँ दुःख का कोई नाम भी नहीं जानता। यह मानना ही पड़ेगा कि जीवन-यात्रा में कुछ न कुछ दुःख अवश्य झेलना है। अन्धकार न हो तो प्रकाश का अनुभव ही कैसे हो सकता है ? हमको इस बात की शिकायत न करनी चाहिये कि गुलाब के फूल

में काँटे होते हैं; किन्तु यह देखना चाहिये कि काँटों में भी ईश्वर ने फूल खिलाये हैं। संसार दर्पण के तुल्य है। यदि तुम हँसते हुए इसकी ओर देखोगे तो वह भी हँसता हुआ दिखाई देगा। यदि तुम उसकी ओर क्रोध करके देखोगे तो उसमें भी क्रोध की ही झलक पाओगे। यदि लाल शीशे से संसार की ओर देखोगे तो सर्वत्र लाल दिखाई पड़ेगा और यदि काले शीशे से देखोगे तो काला। इसलिये सदैव सब वस्तुओं के गुण की ओर ही देखना उचित है। संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं, जिसमें कुछ न कुछ गुण मौजूद न हो। सबसे नम्रतापूर्वक मीठी बाणी से बोलो और सदैव प्रसन्नचित्त रहो। केवल उन्हीं के साथ—जो अपने निकट हैं—प्रीति-पूर्वक रहना काफ़ी नहीं है। हम दुःखी इसलिये हैं कि हम अपने छोटे से छोटे दुःखों को भी बराबर गिनते रहते हैं; पर सुख कैसा ही बड़ा क्यों न हो, उसे तुरन्त ही भूल जाते हैं। बाइबिल में एक जगह लिखा है—"दुःख का मार्ग फूलों से बिछा हुआ और सुख का कंटकमय है।" यही कारण है कि लोग उस मार्ग को बहुत पसन्द करते हैं, और क्षणिक सुख के लिये अपना सम्पूर्ण जीवन नष्ट कर बैठते हैं।

यदि हम धनी नहीं हैं, न सही। हमारा मान नहीं है, न सही। हमको इस बात की चिन्ता न होनी चाहिये। धन-मान सब मनुष्य प्राप्त नहीं कर सकते, किन्तु सत्पुरुषों का कोष सबके लिये खुला है। किसी ने ठीक कहा है :—

The true wealth does not consist in what we have, but in what we are.

धन का होना या न होना जीवन में होता ही रहता है। "धन नहीं है इसलिये दुःखी रहना निरी मूर्खता है। फिर धन हमको सुखी भी तो नहीं बना सकता। प्रायः देखा गया है कि धन-धान्य से सम्पन्न लोग भी चिंतित और खिन्न हृदय रहते हैं। यथार्थ सुख का होना तो हृदय पर ही निर्भर है।

मानव गृहों का भविष्य

वर्तमान को देखकर भविष्य जाना जाता है। कोई भी विचारशील व्यक्ति आजकल के घर देखकर यह सहज ही बता सकता है कि भविष्य में घर कैसे होंगे ? आजकल घर का अर्थ क्या है ? यही न कि वह स्थान जहाँ आपके माँ-बाप भाई-बहिन स्त्री-बच्चे आदि रहते हैं और जहाँ आप अपने कुत्ते को खुला छोड़ सकते हैं, तोते का पिंजड़ा टाँग सकते हैं और अपने मित्रों को दावत देसकते हैं। यदि घर की यह परिभाषा वैज्ञानिक न हो तो यह कह सकते हैं कि घर उन तमाम परिस्थितियों को कहते हैं जिनके वशीभूत होकर स्त्रियाँ अपना कर्त्तव्य-पालन करती हैं। पर भविष्य में घरों का यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता। भविष्य के घरों में मनुष्य का न माँ-बाप से कोई सम्बन्ध रहेगा, न कुत्तों-बिल्लियों से। इस शब्द से केवल उन कमरों का बोध होगा जहाँ आदमी खायेगा, सोयेगा और अपना जी बहलायेगा।

इसमें सन्देह नहीं कि संसार परिवर्तनशील है और इतिहास इस बात की गवाही देता है कि इसमें बड़े-बड़े परिवर्तन हुए हैं। राष्ट्रों का उत्थान और पतन हुआ है, धर्मों का विकास और लोप हुआ है. पहनावे आदि में ज़मीन-आसमान का भेद उपस्थित हो गया है, पर संसार की इस परिवर्तनशीलता का घरों पर कोई

असर न पड़ा था। बाबा आदम के ज़माने में जिस प्रेम से मनुष्य अपने बन्धु-बान्धव में रहते थे वैसे ही आज भी रहते हैं। त्रेता युग की सीता और द्वापर की राधा के आज भी अनेक उदाहरण मिल जायँगे पर आजकल का ज़माना गला फाड़ फाड़कर कह रहा है कि जो कभी नहीं हुआ, वह भविष्य में होगा। अर्थात् मानवगृहों की, जो सृष्टि की आदि से ज्यों के त्यों चले आ रहे हैं, काया पलट जायगी। उनमें जो प्रेम का समुद्र लहरा रहा था वह सब का सब बादल बनकर उड़ जायगा। वह चारों तरफ़ बरसेगा, या बरसेगा ही नहीं।

लोग कहते हैं कि स्त्रियों से ही घर बनते हैं। 'बिन घरनी घर भूत का डेरा।' पर भविष्य इस बात के विरुद्ध घोर आन्दोलन करेगा। वह सिद्ध कर देगा कि यह बात ग़लत है। स्त्रियों ने घर इसलिये बसाया कि उन्हें इस काम के लिये विवश किया गया। लोगों ने उनसे कह दिया कि तुम गृहणी हो—गृह की देख-रेख करो। बस उन्होंने यह बात मान ली। न मानतीं भी, तो उन्हें माननी पड़ती; क्योंकि भूत काल में पुरुष प्रबल थे। इतना ही नहीं, भविष्य स्त्रियों को घरों से बाहर खड़ी कर देने के लिये बड़ी बड़ी चालें चलेगा और उनके भूतकाल के कष्टों का वर्णन करके उन्हें उत्तेजित करेगा। तब स्त्रियों से सम्बन्ध रखनेवाले अख़बार अपने नोट इस प्रकार लिखेंगे—"जहाँ तक हो सका, स्त्रियों ने जी तोड़कर गृहस्थी की सँभाल की। लोगों ने उनके हाथ में झाड़ू देकर उन्हें मेहतर बना दिया। उन्हें रसोई में बैठालकर



उन्हें रसोइया बना दिया। बेचारियों ने बिना ज़बान डुलाये दाई का काम किया, दासी का काम किया—ओफ़् अत्याचार का कुछ ठिकाना है! पुरुषों ने उन्हें इतना बन्द किया कि वे सिवाय घर की टहल के और किसी काम की ही न रह गईं। और ऊपर से यह कहा कि इन कामों में स्त्रियों का ख़ूब दिल लगता है। अरे! यह तो मनुष्य का स्वभाव ही है कि वह जो काम करेगा उसी में दिलचस्पी लेने लगेगा! घोड़ा जब गाड़ी खींचता है तो बड़े अभिमान के साथ टाप उठाता है; पर हाँकनेवाला जानता है कि यह मिथ्याभिमान है। यदि स्त्रियों को काम करने के लिये चुनाव का मौक़ा दिया गया होता तो वे इन भद्दे घरेलू कामों को कदापि पसन्द न करतीं। सच बात तो यह है कि स्त्रियाँ घर बनाने वाली नहीं, उसका भार वहन करनेवाली समझी गईं। पर मर्दों की यह चाल अब न चलेगी। यह गृहस्थी का फ़िज़ूल बोझा स्त्रियाँ अपने सिर से फेंक देंगी। यदि घरों में परिवर्तन हो रहा है तो इसका यह मतलब नहीं है कि स्त्रियों में परिवर्तन हो रहा है, बल्कि यह कि पुरुष संसार का वायुमण्डल बदल रहे हैं। असल में पुरुष ही सदैव से घर की सँभाल करते रहे हैं। हाँ, यह काम वे एजंटों द्वारा कराते रहे हैं। इसलिये यदि आज स्त्रियों ने घरेलू कामों से इस्तीफ़ा दे दिया है तो इसका अर्थ है कि पुरुष इन कामों को अपनाने के लिये घोर प्रयत्न कर रहे हैं।"

इस प्रकार के ख़याल जब संसार की प्राणदायिनी हवा में मिलकर उसके साथ एक हो जायँगे तो लड़कियाँ बहुएँ होने पर

गृहस्थी का काम करने से साफ़ इनकार कर देंगी। अधिकांश तो बहू होने से भी इनकार कर देंगी। वे घर के कामों को पति का काम समझ लेंगी। उस ज़माने में जो पुराने ख़याल के लोग रह जायँगे वे यह बिना कहे न रहेंगे कि इस नयी सभ्यता से स्त्रियाँ बिगड़ गई हैं; पर उनके इन ख़यालों की धज्जियाँ उड़ा दी जायँगी और उनका मखौल उड़ाया जायगा। उनसे कहा जायगा कि "आप तो हर एक चीज़ के लिए यही बात कहते हैं।"

यह भी हो सकता है कि लोग बड़ी-बड़ी सुधार-संस्थाएँ स्थापित करें। पर उन संस्थाओं की एक न चलेगी। जो आँखें देखती हैं उसके लिये हृदय मचलता ही है। सिलाई की मशीन सामने खड़खड़ाती देखकर सुई से कपड़े सीने के लिए कौन बैठेगा? जिस शहर में बम्बे लग गये हैं वहाँ के लोगों से कुएँ का पानी नहीं पिया जायगा। एक नहीं, हज़ार उपदेशक आवें। जब १७८६ ई० में जान्स हैनवे लन्दन की गलियों में पहले पहल छाता लगाकर निकला था, तभी किसी विद्वान् ने कहा था कि अब संसार का पतन आरम्भ हो गया। तब से हम बराबर देख रहे हैं कि मनुष्य में आरामतलबी बढ़ती जा रही है। अब यदि स्त्रियाँ छाता लगाकर चलें या बजाय अँगीठी सुलगाने के बिजली से अपना खाना तैयार करलें तो इसमें उनका दोष नहीं है। उनके दिलों में इस प्रकार की इच्छाएँ पुरुषों ने ही उत्पन्न कर दी हैं। आज मशीन से ख़ाली आटा पिसता है, कल वह ज़माना आयेगा कि मशीन में गेहूँ डाल देने से पकी-पकाई रोटी निकल आयेगी।

उस ज़माने में जो अपनी रोटी अपने हाथ से बनायेगा वह बेवक़ूफ़ नहीं तो क्या समझा जायगा ?

आजकल जो उपदेशक कहते हैं कि अठारह वर्ष की युवती को खाना पकाना, सीना-पिरोना, बच्चों का पालन-पोषण करना, हिसाब-किताब रखना आदि सब बातें आनी चाहिये वे यदि यही बात भविष्य में भी कहेंगे तो उन्हें बिना सज़ा हुए न रहेगी। भविष्य में अठारह वर्ष की युवती के लिये इन सब बातों की ज़रूरत न पड़ेगी। टेलीफ़ोन में दो शब्द कहने से पका-पकाया खाना सामने आजायगा। बच्चे पैदा होते ही दाईख़ानों में भेज दिये जायँगे। हर एक बात के अलग-अलग जानकार होंगे। जिसे खाना पकाना आयेगा उसे सीना-पिरोना नहीं आयेगा। तब यदि कोई पत्नी अपने पति को नैहर चले जाने की धमकी देगी तो वह उसकी बात पर विश्वास न करेगा। क्योंकि ब्याह होगा मन्दिरों, मसजिदों या गिरजाघरों में—माँ-बाप रहेंगे होटलों में। नैहर का कहीं पता न चलेगा। यह बात मान ली जायगी कि एक साथ दो औरतें रहेंगी तो झगड़ा ज़रूर होगा। इसलिये एक घर में एक से अधिक स्त्री नहीं रह सकेगी। ननँद-भौजाई, सास-पतोहू की लड़ाई कहानी की बात हो जायगी।

आप का नौकर, जो चौबीस घंटे आप के घर में हाज़िर रहता है, भविष्य में आप से यह शर्त करेगा कि आठ घंटे से अधिक एक मिनट भी आप उसका नहीं ले सकते। यही नहीं, आठ घंटे काम करने के बाद नवें घंटे में मूँछों पर ताव देता हुआ वह आपके बराबर

कुर्सी पर बैठकर अख़बार पढ़ेगा और आप से कहेगा—"मैं यह आन्दोलन करना चाहता हूँ कि नौकरों को केवल चार घंटे काम करना पड़े।" घर में आग तक न होगी। दूध ठंढा हो जायगा तो आप की गृहणी जो कर सकती है वह केवल यही होगा कि टेली-फ़ोन में हलवाई को डाँटेगी और कहेगी—"जल्दी गरम दूध भेजो, इसे वापस ले जाओ।" घर में खाना न बन सकेगा; क्योंकि यह काम या तो बूढ़ी माँ के सिपुर्द किया जायगा, जो पका न सकेगी, या जवान बेटी के सिपुर्द किया जायगा जो पकाने से इन्कार कर देगी। पत्नी से आप खाना पकाने को कहेंगे तो वह आप पर मानहानि का दावा कर देगी।

अन्त में इतना ही लिख देना काफ़ी होगा कि जन्म-संख्या बहुत घट जायगी। बच्चे घर के चिराग़ न समझे जायँगे। स्त्रियों को पूरी स्वतंत्रता देने के लिये और आजकल के घरों को सराय बनाने के लिए जितने भी प्रयत्न हो सकेंगे, सब किये जायँगे। स्त्री घरेलू कामों में अपना बल और यौवन बर्बाद न करेगी। वह नाचेगी, गायेगी, व्याख्यान देगी, शस्त्र चलायेगी और हुकूमत करेगी। पर गृह या गृहस्थी नाम की उसके सम्मुख कोई ऐसी चीज़ न होगी जिसका कुछ अर्थ हो।

प्रकृति में स्त्री की प्रधानता

कोवेन्ट्री पैटमोर (Coventry Patmore) के मत के अनुसार स्त्री इसी लिये बनी है कि "उस पर शासन किया जाय—और खूब सख़्ती के साथ शासन किया जाय। इस दशा में उसको राजनैतिक अधिकारों से सदैव दूर रखना अनुचित नहीं है।" मनुष्य समाज में कोवेन्ट्री पैटमोर की यह नीति भले ही माननीय हो, किन्तु प्रकृति के अन्य प्राणी-समूहों में इसका ठीक उलटा ही दिखाई पड़ता है।

यह सोचकर कि ये प्राणी-समूह तुच्छ चीटियाँ मधु-मक्खियाँ और बर्रं इत्यादि हैं, हमें उनकी अवहेलना न करनी चाहिये। ये वे प्राणी-समूह हैं जिनका अस्तित्व उतना ही पुराना है जितना इस संसार का। जब इस संसार में मनुष्य का अस्तित्व नहीं था उसके पहले भी इन प्राणियों के रहने की बात पाई जाती है। इनका राज्य-प्रबन्ध और सामाजिक जीवन जैसा तब था, अबसे करोड़ों वर्ष पहले वैसा ही अब भी है।

चींटियों के विषय में लार्ड एवबरी (Lord Avebury) का कहना है—"जब हम उनकी आदतों, उनके सामाजिक संगठनों, उनके रास्तों, उनके पालतू जीवों और उनके ग़ुलामों पर विचार करते हैं, तो हमको मानना पड़ता है कि बुद्धि में मनुष्य के बाद वे (चींटियाँ) ही हैं। लार्ड एवबरी के मत में, जहाँ तक मस्तिष्क का सम्बन्ध है, चींटियाँ लङ्गूर से भी अधिक मनुष्य के नज़दीक हैं। यही बात बर्रे और मधु-मक्खियों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

इन सब प्राणी-समूहों में सब से बड़ी विशेषता यह है कि ये सब स्त्री के शासन में रहते हैं। इनमें मैजिस्ट्रेट, जज, पुलीस, सैनिक, सौदागर, गवैये और सब प्रकार के अधिकारी इत्यादि स्त्रियाँ ही होती हैं; पुरुषों को कोई नहीं पूछता। यह बात नहीं है कि स्त्रियाँ पुरुषों को राजनैतिक अधिकार देना ही नहीं चाहतीं। असल बात यह है कि पुरुष उसके योग्य होते ही नहीं। वे गृहनिर्माण, (बिल खोदना या छत्ता बनाना) धन-संग्रह, सन्तान-पालन, शिशु-शिक्षा इत्यादि किसी बात में कोई भाग नहीं लेते।

चींटियों में गृह-निर्माण और धन-संग्रह के बाद जो मुख्य काम होता है, वह है बच्चों का पालन-पोषण और उनकी शिक्षा। बच्चे जब अंडों से निकलते हैं तो उनके टाँगे नहीं रहतीं। वे अपने आकार की वृद्धि के अनुसार एक-एक करके ६ घरों में रक्खे जाते हैं। दूसरा घर पहले से बड़ा होता है और तीसरा दूसरे से।

इस प्रकार छठवाँ घर सब से बड़ा होता है। बच्चे बराबर अपने क़द की वृद्धि के अनुसार एक छोटे घर से दूसरे बड़े घर में ले जाये जाते रहते हैं। हाल के पैदा हुए बच्चे सबसे छोटे घरों में रक्खे जाते हैं। सबको बराबर भोजन दिया जाता रहता है। दिन को बच्चे ऊपर लाये जाते हैं ताकि उनके शरीर में सूरज की रोशनी और गर्मी लगे। रात को सर्दी इत्यादि से बचने के लिए वे फिर नीचे कर दिये जाते हैं। यदि किसी प्रकार का उपद्रव उपस्थित हो तो चींटियाँ मर भले ही जायँ, बच्चों की उचित देख-रेख और रक्षा से मुख नहीं मोड़ सकतीं। जब तक अन्तिम अन्डा सुरक्षित स्थान पर न पहुँच जाय, कोई चींटी शांत नहीं हो सकती! इन सब कामों में पुरुष महाशयों का कोई भाग नहीं रहता। वे बड़े ही आलसी और टुकड़ेख़ोर होते हैं। ऐसी दशा में वे उपद्रव इत्यादि के समय रास्तों में इधर-उधर भागने या गृह के ख़ाली घरों में अधिकार जमाकर बैठ रहने के सिवा और कर ही क्या सकते हैं। प्रकृति के इस समाज में कोवेन्ट्री पैटमोर का शासन—और सख़्त शासन—बजाय स्त्रियों के पुरुषों पर होता है। लेकिन यहाँ बुद्धिमानी से काम लिया जाता है। अर्थात् यहाँ केवल टुकड़ेख़ोर और आलसी व्यक्ति ही, जो समाज के लिये बिलकुल अनुपयोगी हैं, शासित होते हैं।

बर्र का नाम बदनाम है। इस बदनामी से बर्र-स्त्रियाँ वञ्चित नहीं हैं। किन्तु हमारी समझ में उनपर यह दोषारोपण करना अन्याय है। बर्र स्त्रियाँ बड़ी परिश्रमी होती हैं और किसी को जानबूझ

कर दुखाना नहीं चाहतीं। उनके डंक होते हैं, पर वे उनका उपयोग तब तक नहीं करतीं, जब तक उनको कोई छेड़ता नहीं। बर्र-स्त्रियाँ अपने पुरुषों का बड़ा ख़याल रखती हैं। पुरुष छत्ता बनाने या बच्चों की रखवाली करने में स्त्रियों की कोई सहायता नहीं करते, फिर भी वे छत्ते में यावज्जीवन सुख से रह सकते हैं। इसलिये नहीं कि स्त्रियाँ उनसे दबती हैं, बल्कि इसलिये कि वे उनके साथ सहानुभूति रखती हैं। बर्र-पुरुषों के डंक न होने के कारण उसकी रक्षा का भी भार स्त्रियाँ ही लेती हैं। लेकिन बर्र चींटियों की भाँति अपने पुरुषों को आलसी होकर नहीं बैठने देतीं। उनसे छत्ते की सफ़ाई इत्यादि का काम लेती हैं। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि पुरुषों को यह काम भी स्त्रियों ही की निगरानी में करना पड़ता है।

बर्र में जाड़े के लिए भोजन-संग्रह करने की आदत नहीं है। इसलिये जाड़े का समय बहुत कम बर्रें, कुछ रानियाँ ही, पार कर सकती हैं। इसके विपरीत मधु-मक्खियों में जाड़े के लिए काफ़ी धन-संग्रह करने की बान है। वे इतना खाद्यपदार्थ जमा कर लेती हैं कि जाड़ा आसानी से व्यतीत हो सके। मधु-मक्खियाँ ऐसे व्यक्तियों को, जिनसे समाज का कोई लाभ न हो, अपने समाज में रखना उचित नहीं समझतीं। यहाँ यह लिखने की आवश्यकता नहीं है कि ऐसे व्यक्ति उनके पुरुष ही होते हैं जो उनके एकत्र किये मधु को चुपचाप खा जाने के सिवा और कुछ नहीं करना चाहते गर्भाधान का समय समाप्त हो जाने के एक सप्ताह बाद यदि पुरुष

छत्ता छोड़कर चले नहीं जाते तो उनके पीछे पुलीस लग जाती है और वे घसीटकर द्वार के बाहर कर दिये जाते हैं। इस पर भी यदि वे लौट आते हैं तो जज के सामने पेश किये जाते हैं, जिसके फ़ैसले के अनुसार जल्लाद उन्हें मार डालते हैं। पुरुष इन सब यन्त्रणाओं को सहते हैं, पर वे परिश्रम कदापि नहीं करते। योग्यता रखते हुए भी वे परिश्रम करना नहीं चाहते। यही कारण है कि स्त्रियाँ उनके साथ ऐसा कड़ा बर्ताव करती हैं। और यदि उनके साथ ऐसा कड़ा बर्ताव न किया जाय तो वे घर में बैठकर सब कुछ खा डालें। इस प्राणी-समूह के राजनीतिज्ञों में बड़ा अन्तर है। वे अयोग्य और आलसी व्यक्तियों को कोई अधिकार नहीं देते। जो गृह की रक्षा और सब की भलाई में निरन्तर लगे रहते हैं उनकी समझ में वे ही सच्चे अधिकारी हैं। किन्तु हमारे राजनीतिज्ञ स्त्रियों के छोटे-छोटे अधिकारों को भी सिर्फ़ इसीलिए छीन लेते हैं कि वे स्त्रियाँ हैं। यह नहीं सोचते कि केवल स्त्री होने से ही वे अयोग्य नहीं हैं। उनमें भी साहित्य, विज्ञान और कला इत्यादि का अस्तित्व है। फिर योग्य कार्य्य से उनको वञ्चित रखना अन्याय नहीं तो और क्या होगा?

———

पुरुषों के विषय में

मैंने अनुभव किया है कि पुरुष-लेखकों में स्त्रियों के विषय में लिखने की एक विचित्र बात है। पत्र-पत्रिकाओं में ही नहीं, इस विषय पर अलग से भी बड़ी-बड़ी किताबें लिखी गई हैं। स्त्री की आकृति कैसी होती है, उसका चरित्र कैसा रहस्यमय होता है, वह किस प्रकार पुरुषों का मन मोह लेती है, उसका शृंगार कैसा आकर्षक होता है, उसको कैसे वेश में रहना चाहिये, इत्यादि बातों पर पुरुष प्रायः आपस में बातचीत किया करते हैं। यह इसी देश के पुरुषों की दशा नहीं है। समस्त संसार का यही हाल है। प्रत्येक पुरुष के लिए स्त्री एक बिल्कुल नयी और किसी प्रकार समझ में न आनेवाली वस्तु है। कोई भी मासिक या साप्ताहिक पत्र खोलिये, उसमें एक न एक लेख या पद्य अवश्य ऐसा मिलेगा जो ख़ासकर स्त्री को लक्ष्य करके लिखा गया है।

अनुचित अनुमान।

मैं नहीं जानता कि ऐसा क्यों किया जाता है? मैं यह भी नहीं जानता कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ क्यों इतनी अधिक अध्ययन की जाती और लिखी जाती हैं? मैं यह मानता हूँ

कि स्त्रियाँ पुरुषों से भिन्न हैं। किन्तु क्या इसीलिये यह कहा जाय कि—"स्त्रियाँ ऐसा करती हैं, स्त्रियाँ ऐसी होती हैं।" इसके साथ यह भी क्यों न कहा जाय कि—"पुरुष ऐसे होते हैं, पुरुष ऐसा करते हैं।" "त्रिया चरित्र न जाने कोय" ही क्यों कहा जाता है, "पुरुष चरित्र न जाने कोय" क्यों नहीं कहा जाता। पुरुषों का विषय भी वैसा ही रहस्यमय, कठिन और रोचक बनाया जा सकता है जैसा स्त्रियों का। इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। कोई उपन्यासकार स्त्री-स्वभाव का ही अच्छा ज्ञाता बनने का क्यों उद्योग करता है, उसे पुरुष-स्वभाव के जानने की भी तो उतनी ही आवश्यकता है। स्त्रियाँ पुरुषों के कार्य्य उनकी, रहन-सहन, उनकी पोषाक इत्यादि की अवहेलना करके एक प्रकार से उनके साथ अन्याय करती हैं।

मथुरा में दयानन्द-शताब्दी के अवसर पर मैंने यमुना-तट पर कितने ही पुरुषों को कहते सुना—"देखो तो स्त्रियाँ कितने असंयत भाव से और ज़रा-ज़रा से कपड़े पहनकर स्नान करती हैं कि इनकी वह सुन्दरता, जिसे लज्जा से उत्पन्न होना चाहिये, नष्ट हुई जा रही है।" इस पर मैं विचार करने लगा। देखा, पुरुष जो कपड़े पहनकर स्नान करते हैं, वे स्त्रियों के कपड़ों से बहुत ही कम हैं। बहुत से तो केवल लँगोट ही चढ़ाये जल में घुसे जा रहे हैं, इसके लिये पुरुषों को लज्जा क्यों नहीं आती। इसकी क्या आवश्यकता है कि केवल स्त्री ही नहाते समय भी कुरते इत्यादि पहने रहे और मुँह पर से भी कपड़ा न हटावे।

पुरुषों का जङ्गलीपन।

मुझे आप पुराने फ़ैशन का कह सकते हैं। लेकिन मैं यह बिना कहे नहीं रह सकता कि आजकल के पुरुष—और विशेषकर अँगरेज़ी पढ़े-लिखे—बड़े ही असभ्य होते हैं। मैं ऐसे पुरुष को देखना एक दम नापसन्द करता हूँ जिसके मुँह से सिगरेट का धुवाँ निकलता हुआ रसोईघर तक चला आता है और जो चारों तरफ़ धुवें की दुर्गन्धि फैलाकर पूछता है—"रोटी हो गई?" ऐसा भी पुरुष मेरी समझ में जंगली ही है जो यात्रा के समय रेल के डब्बे में पतलून से ढँकी टाँग फैलाकर सोता है और एक कोने में सिकुड़कर बैठी हुई पत्नी से कहता है—"कहीं सो मत जाना; रेल में चोरी इत्यादि हो जाने का भय रहता है!"

गृहस्थी और पुरुष।

आप मुझसे पूछ सकते हैं कि पुरुष क्या हैं और उनको स्त्रियों के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये। अच्छा सुनिये, मेरी समझ में प्रत्येक पुरुष को यह सदैव स्मरण रखना चाहिये कि स्त्रियों की समझ में वह गृह-निर्माण-कर्त्ता है। जिस प्रकार कहा जाता है कि बिना स्त्री के गृह कोई गृह नहीं है। स्त्री न होती तो संसार ही न होता। ऐसा कहनेवालों को यह न भूलना चाहिये कि पुरुष न होते तो भी यह संसार न होता। हाँ, इस संसार को संसार बनाने का भार पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों पर अधिक है। जिस प्रकार आभूषणों की एक झनकार मात्र से किसी गृह में स्त्री की उपस्थिति का अनुभव हो जाता है, उसी प्रकार तम्बाकू

के धुवें की दुर्गन्ध-मात्र पुरुष की उपस्थिति की सूचना दे देने की एक सर्वमान्य बात हुई जा रही है।

प्रत्येक स्त्री यह अनुभव करना चाहती है कि उसका निवास-स्थान काफ़िलों की सराय नहीं है। गृह में एक व्यक्ति ऐसा भी है, जिसके पास वह शान्ति और सान्त्वना के लिये आ सकती है। हमारे घरों में आजकल पुरुष स्त्रियों का बिल्कुल ध्यान नहीं रखते। अधिकांश स्त्रियों को अपने पास-पड़ोस की स्त्रियों से गपशप करने का जितना मौक़ा मिलता है, अपने पतियों से वे उसका अल्पांश भी नहीं पातीं। शिक्षा में समानता न होने के कारण अधिकांश पुरुषों की बातचीत का विषय उनकी स्त्रियों से भिन्न रहता है; किन्तु कितने पुरुष ऐसे हैं जो इस बात को सोचते हैं?

पिता के उत्तरदायित्व।

जाति की रक्षा का भार पुरुषों पर ही है। या यों कहिये कि पुरुष जाति के पिता हैं। यदि कोई पुरुष पिता नहीं है तो वह पुरुष होने में एक प्रकार से असफल हुआ है। फिर वह चाहे चित्रकार हो, चाहे कवि हो और चाहे लेजिसलेटिव कौंसिल का मेम्बर हो। वह पुरुषत्वहीन है। कुमार अर्थात् अविवाहित पुरुष महात्मा हो सकता है, पर वह पति और पिता नहीं हो सकता। पति और पिता होने से मेरा मतलब विवाह करके ढेर के ढेर बच्चे पैदा करने से नहीं है। ऐसे तो सैकड़ों पति और पिता गलियों में मारे-मारे फिरते हैं। पति से मेरा मतलब है एक पत्नी-व्रत का पूर्ण पालन करनेवाला, और पिता से मतलब है,

जाति-वृद्धि और रक्षा करनेवाला। पति और पिता के हाथ में ही जाति के सद्गुणों की रक्षा है। वे जैसा ऊँचा चरित्र स्त्रियों से मागेंगे, स्त्रियाँ वैसा ही चरित्र उपस्थित करने से इन्कार नहीं कर सकतीं। किन्तु ऐसे कितने पुरुष हैं जो स्त्रियों की चरित्र-रक्षा का ध्यान रखते हैं? मेरी तो यह धारणा है कि जब स्त्री किसी पापकर्म में प्रवृत्त होती है तो उसमें पुरुष का ही दोष अधिक रहता है। स्त्रियों का चरित्र-निर्माण स्त्रियों के हाथ में उतना नहीं है जितना पुरुषों के हाथ में है। इतिहास इस बात का प्रमाण है। पर्दे की प्रथा, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, वेश्याओं की वृद्धि इत्यादि के कारण पुरुष ही हैं। जब वे जाति के पिता हैं, तो क्या जाति पर उनका यह अत्याचार नहीं है? और क्या पुरुष एक सच्चे पिता की भाँति अपने इस उत्तरदायित्व को समझते हैं?

विवाह की उत्पत्ति

परमात्मा ने किसी पुरुष को किसी स्त्री-विशेष का पति बनाकर नहीं भेजा और न किसी स्त्री को किसी पुरुष-विशेष की पत्नी बनाकर। यह सम्बन्ध इसी पृथ्वीतल पर निश्चित होता है। विकासवादियों का यही मत है। सम्भव है, धर्मशास्त्र इसे स्वीकार न करे।

मनुष्य और पशु में आजकल बड़ा अन्तर है। परन्तु सृष्टि के आदि में यह बात न थी। उस समय मनुष्य भी पशुओं की भाँति रहते थे और उनमें वैवाहिक सम्बन्ध भी उसी प्रकार होते थे जैसे आजकल पशुओं में हैं।

चीन का इतिहास बतलाता है कि प्राचीन काल में मनुष्य और पशुओं के जीवन में बहुत भेद नहीं था। पुरुष और स्त्रियाँ दोनों ही स्वच्छन्द विचरते थे। प्रत्येक स्त्री किसी पुरुष के साथ जब तक चाहे, इच्छानुसार रह सकती थी। इसका परिणाम यह होता था कि बच्चे केवल अपनी माता को ही जानते थे। उन्हें स्वप्न में भी यह ज्ञान न होता था कि पिता भी कोई चीज़ है। चीन के एक बादशाह फौही (Fouhi) ने इस प्रथा को बन्द किया और विवाह की रीति चलाई।

सम्भव है, भारत में विवाह की व्यवस्था उस समय भी रही हो। पर महाभारत से पता चलता है कि उस समय (महाभारत

काल में) भारत की स्त्रियाँ पूर्ण रूप से स्वतंत्र थीं। उनको कहीं आने-जाने की क़ैद न थी और यदि वे इत्तिफ़ाक़ से अपने पति को छोड़कर किसी अन्य पुरुष के साथ प्रेम करती थीं तो भी उनपर दोषारोपण नहीं किया जाता था; क्योंकि प्राचीनकाल की यही रीति थी। यह प्रथा सबसे पहले श्वेतकेतु ऋषि को बुरी जान पड़ी। उन्होंने यह नियम निकाला कि स्त्री-पुरुष परस्पर एक-दूसरे का इतना ध्यान रक्खें कि उन्हें अन्य स्त्री या पुरुष का सौन्दर्य्य विचलित न कर सके। यहीं से पातिव्रतधर्म का आरम्भ होता है।

इसके पश्चात् मिश्र (इजिप्ट) और यूनान में विवाह की व्यवस्था हुई। इसके पूर्व वहाँ भी बच्चे पिता को न जानते थे और उनका नाम प्रायः माता के ही नाम पर रक्खा जाता था।

यह तो साफ़ ही है कि अधिकांश जानवरों में सन्तान-रक्षा का भार सम्पूर्णतः प्रकृति के हाथ में ही छोड़ देने की बान है। कितने ही जानवरों में तो माता बच्चे को पहचानती भी नहीं। अण्डजों में अधिकांश ऐसे हैं जो एक सुरक्षित स्थान में अण्डा देकर मूँद देने के पश्चात् ही कर्तव्य से बरी हो जाते हैं। यह भी मादा का कर्तव्य होता है, नर का नहीं। कछुये, मगर इत्यादि में देखा गया है कि वे एक बार अंडा रखकर फिर उसकी ख़बर नहीं लेते। कुछ जानवरों में नर और मादा दोनों मिलकर अंडों-बच्चों को सेते भी हैं। जो हो,जानवरों में यह आम क़ायदा है कि उनके जोड़े काम-वासना से प्रेरित होने पर ही इकट्ठे होते हैं और उसके पूर्ण होते ही पुनः पृथक् हो जाते हैं। और फिर एक-दूसरे

से कोई सम्बन्ध नहीं रखते। मनुष्य में भी अधिकांश जोड़े केवल इसी उद्देश से इकट्ठे होते देखे गये हैं।

किन्तु गौरैया इत्यादि चिड़ियों में देखा गया है कि उनके जोड़ों के इकट्ठे होने का कारण केवल काम-वासना ही नहीं है। वे सन्तान को पालते-पोषते भी हैं। नर तिनके लाता है, मादा घोंसले बनाती है और बच्चों के बड़े होकर उड़ जाने पर भी उनका साथ ज्यों का त्यों बना रहता है। बतखों के जोड़े में नर सम्पूर्ण भार मादा पर छोड़ देता है; पर चिड़ियों में आम तौर पर मादा अंडा सेती है, नर भोजन लाता है और उसकी रक्षा करता है। इससे पता चलता है कि चिड़ियों में भी विवाह की रीति है। कुछ चिड़ियाँ तो ऐसी हैं कि मादा और नर यावज्जीवन एक-दूसरे से पृथक् नहीं होते। सम्भव है, इस प्रकार जोड़ों में रहने और सन्तान-पालन का भाव चिड़ियों ही को देखकर मनुष्य के हृदय में जागृत हुआ हो। चकई और चकवा के मिलन और वियोग के सुख-दुख का अनुभव तो बड़े-बड़े कवियों ने भी किया है। एक अंग्रेज़ विद्वान डाक्टर ब्रेह्म DR: Brehm का तो यहाँ तक कहना है कि—

"The real genuine marriage can only be found among birds."

अर्थात् "आदर्श विवाह तो चिड़ियों में ही पाया जाता है।"

बनमानुस के विषय में कहा जाता है कि जब मादा गर्भवती होती है तो नर किसी सघन बन में किसी पेड़ की जड़ से मिलाकर एक बड़ा सा घोंसला बनाता है। उसी में मादा बच्चे देती है।

बन्दरों में भी नर-मादा दोनों मिलकर बच्चों की रखवाली करते हैं। डारविन के मत के अनुसार मनुष्य की उत्पत्ति ही बन्दर से है। फिर यदि उसने बन्दर से ही विवाह की शिक्षा पायी हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है।

नीचे कुछ जंगली जातियों में विवाह की रीतियाँ लिखते हैं। इससे साफ़ तौर से समझ में आ जायगा कि ज्यों ज्यों सभ्यता बढ़ी है, त्यों त्यों विवाह में भी सुधार हुआ है।

नार्थ अमेरिका के इन्डियन्स में मनुष्य उतनी ही स्त्रियाँ रख सकता है जितनों का वह पालन-पोषण कर सके। इसके विरुद्ध चलनेवाला समाज में तिरस्कृत होता है। कैलीफ़ोर्निया के एक जाति के लोगों में पुरुष के लिए यह बड़ा सख़्त नियम है कि वह स्त्री की सभी आवश्यकताओं को पूर्ण करे। बोटोकुडोस (Boto cudos) यहाँ तक नियम है कि वहाँ पुरुष को विवाह के दिन से ही स्त्री का भरण-पोषण करना पड़ता है, चाहे स्त्री पिता के ही घर रहे। आस्ट्रेलिया के (Encounterbay) इनकौंटरबे के निवासियों में सन्तान के पालन-पोषण का भार पिता पर इतना अधिक है कि यदि स्त्री के गर्भवती होने पर पुरुष मर जाय तो उस गर्भ से जो बच्चा पैदा होता है वह भी मार दिया जाता है; क्योंकि उसका भरण-पोषण करनेवाला कोई नहीं रहा। टोंगा द्वीप में विवाहिता स्त्री उसे कहते हैं, जो अपने पति के साथ रहती है। समोआ में किसी स्त्री का किसी पुरुष के साथ अनुचित सम्बन्ध हो सकता है, पर वह उसकी पत्नी तब तक नहीं होती, जब तक उसके घर में जाकर रहे

न। अफ्रीका में पुरुष बच्चा होने के दिन उपवास करके यह सूचित करता है कि वह उसकी रक्षा करेगा। नागा जाति के लोग तब तक विवाह नहीं कर सकते, जब तक वे बधू को रखने के लिए एक घर बनाकर दिखा न दें। बर्मा की स्त्री पुरुष को तलाक़ दे सकती है, यदि वह उसका भरण-पोषण न कर सके। अरब के लोगों में विवाह के पहले पुरुष को लड़की के कुटुम्बीजनों द्वारा कोड़े खाने पड़ते हैं! इससे उसके साहस की जाँच होती है!

इन्हीं उदाहरणों से पाठक अनुमान कर सकते हैं कि आरम्भ में पुरुष और स्त्री दोनों पृथक्-पृथक् रहते होंगे। फिर काम-वासना से प्रेरित होकर कुछ जानवरों की भाँति मिले होंगे, कुछ चिड़ियों की भाँति, कुछ बन्दरों की भाँति और कुछ ऊपर कही गई जंगली जातियों की भाँति।

हाँ, मनुष्य और उपर्युक्त जीवों के जोड़ों में कुछ अन्तर अवश्य रहा होगा। एक पाश्चात्य विद्वान् ने इस अन्तर को अनुभव करने की चेष्टा की है। वह कहता है—

"That which distinguishes man from beast is drinking without being thirsty and making love at all times."

अर्थात् "बिना प्यास के पीना और प्रत्येक ऋतु में प्रेम में संलग्न रहना ही एक ऐसी वस्तु है जो मनुष्य को जानवर से पृथक् करती है।"

यही काम-वासना सन्तान के प्यार के साथ मनुष्य के कुटुम्ब में रहने का भी कारण हुई होगी। यह दूसरी बात है कि इस समय कुछ और ही कारण हो।

पतियों के सम्बन्ध में कुछ जानने योग्य बातें

प्रत्येक स्त्री को जीवन में एक ऐसा साथी मिलता है जो उसे प्रकाश से भी सुन्दर और शरबत से भी मीठा प्रतीत होता है। वह साथी पति है। उसी के सम्बन्ध में यहाँ एक प्रसिद्ध लेखिका के विचार उपस्थित किये जाते हैं।

पति-देवताओं के सम्बन्ध में एक लेख लिखने की मेरी बहुत दिनों से इच्छा थी। जब मैंने अपने पति-देवता से यह इच्छा प्रकट की तो उन्होंने कहा—"ख़बरदार, ऐसा लेख लिखोगी तो गरदन तोड़ दूँगा, तुम क्या जानो कि पति कैसे होते हैं। तुम्हें तो सिर्फ़ एक पति से काम पड़ा है।" मैं चुप हो गई; पर मेरी यह इच्छा बनी रही। आज बहुत दिनों के बाद वह पूरी हुई है। पर मुझे हर्ष के साथ लिखना पड़ता है कि इस लेख में मुझे मेरी गर्दन तोड़नेवाले पति-देवता से बहुत कुछ सहायता मिली है।

लेख लिखने से पहले मेरे दिल में यह बात पैदा हुई कि पति है क्या चीज़? अर्थात् पति की परिभाषा क्या है? मेरे पति-देव फ़िलासोफ़ी के प्रोफ़ेसर हैं। इसलिए मैंने एक दिन उन्हीं से पूछा—"पति किसे कहते हैं?" वे बोले—"पति वह बिगड़ैल जानवर है, जो..........।" इतना कहकर वे चुप होगये और मुसकराकर कहने लगे—"ओह अब समझा, तुम इस विषय पर एक लेख

लिखने जा रही हो, तब न बताऊँगा।" मैंने कहा—"तुमने विवाह में जो प्रतिज्ञा की थी कि मुझे सब तरह से सन्तुष्ट रखोगे, उसे भूल गये क्या ?" वे बोले—"और तुमने जो प्रतिज्ञा की थी कि मेरा आदर करोगी, मेरी आज्ञा मनोगी, वह ?" मैं चुप रही।

वैसे तो संसार में करोड़ों पति हैं और उन पर करोड़ों लेख लिखे जा सकते हैं। पर मैं सब बहिनों की जानकारी के लिए इस लेख में केवल वे बातें लिखूँगी जो सब पतियों में पायी जाती हैं।

जैसे स्त्रियाँ एक जगह बैठी रहती हैं वैसे पति-लोग एक जगह नहीं बैठ सकते और बैठ भी सकते हैं तो घर के बाहर, घर के भीतर नहीं। सबेरा होते ही घर से निकल जाना उनकी एक ख़ास आदत है। इस नियम के विरुद्ध कुछ उदाहरण मिल सकते हैं, पर आम तौर से देखने में यही आता है।

दूसरी बात पतियों के सम्बन्ध में यह देखने में आती है कि वे बाहर चाहे जिसका हुकुम मानते रहें, घर में पैर रखते ही लाट साहब हो जाते हैं और स्त्री को हुकुम देने लगते हैं—"लाओ पान ! लाओ साबुन ! लाओ धोती ! लाओ छड़ी ! लाओ जूता !"

तीसरी बात यह कि स्त्री के साथ कहीं जाने को होता है तो बड़ी जल्दी मचाते हैं। कोट-पैंट पहनकर, छड़ी ले, बार-बार घड़ी की तरफ़ देखकर कहने लगते हैं—"जल्दी चलो, पिछड़ जायँगे। आठ बज गया ! पाँच मिनट और हैं। ओ हो ! सुनती हो ! आधी रात तो यहीं कर दोगी।" इस प्रकार वे चिल्लाते हैं और स्त्री

बेचारी कहीं साड़ी बदलती है, कहीं बाल सँवारती है, कहीं दर्पण में मुँह देखती है, कहीं जूते पर पालिश करती है, कहीं रूमाल ढूँढ़ने लगती है, कहीं सेफ़्टीपिन खो जाती है। बेचारी के तैयार होने में आँधी-पानी सब आजाता है। मेरा तो खयाल है कि स्त्रियाँ इस सम्बन्ध में बहुत बदनाम हो चुकी हैं। जहाँ भी पुरुषों के साथ स्त्रियाँ सफ़र के लिए तैयार होती हैं, लोग कहते हैं—"ओह! बड़ी देर होगी"।

पर यह बात नहीं है कि पति-लोग हर काम जल्दी और ठीक समय पर करते हैं। घर में भोजन करने वे कभी भी ठीक समय पर नहीं आते और स्त्री को रोज़ घंटों उनकी राह देखनी पड़ती है। मेरा तो यह दृढ़ विचार है कि पति-लोग सिवाय अपने मृत शरीर की दाह-क्रिया के और कभी समय पर उपस्थित नहीं होते! पर उनके इस समय की पाबन्दी से स्त्री को कोई लाभ नहीं; क्योंकि अब देश में सती होने की प्रथा नहीं है। प्रत्येक स्त्री इस बात का अनुभव कर सकती है कि पति-लोग सबेरे घर आने को कह जाते हैं, पर हमेशा देर से आते हैं और तरह तरह के बहाने बनाते हैं। कभी कहेंगे—"आज काम ज़्यादा था।" कभी कहेंगे—"तुम्हारे लिए एक साड़ी देखने लगा।" कभी कहेंगे—"एक बड़े पुराने दोस्त के यहाँ चला गया था।" इत्यादि।

पाँचवी बात जो मैंने पतियों के सम्बन्ध में देखी और सुनी, वह यह है कि वे स्त्रियों की अपेक्षा अधिक बलवान समझे जाते हैं। मालूम नहीं, यह विचार सारे मनुष्य-समाज में कहाँ से और

कैसे फैल गया है। शायद इसी कारण मेरे पति-देवता यदा-कदा मेरी गर्दन तोड़ने की धमकी दे बैठते हैं। पर मैं समझती हूँ कि यह बात किसी अंश में ठीक है। मेरे पति-देवता स्वयं बड़े मज़बूत हैं। गठरी बाँधने और पालिश की शीशी खोलने में वे एक ही हैं! यह तो हुआ पतियों का साधारण स्वभाव। अब मैं उनकी उपयोगिता के सम्बन्ध में कुछ बातें लिखकर इस लेख को समाप्त करूँगी।

स्त्री के लिए पति संसार में सब से अधिक उपयोगी और काम में आनेवाली वस्तु है। पति उस जादू के डिब्बे के समान है जो माँगने से हर वस्तु दे सकता है। पति वह रुपया है जिससे हम आवश्यक चीज़ें ख़रीद सकती हैं और फिर भी वह पूरा का पूरा बना रहता है। पति जेबी बैंक है जो हर समय और हर स्थान पर रुपया-पैसा दे सकता है। पति रुपया कमाने की मशीन है, बोझा ढोने का मुफ़्त का टट्टू है। और भी उसके बहुत से उपयोग हैं जिनका मैं यहाँ ज़िक्र नहीं करना चाहती। समझदार स्त्रियाँ स्वयं सोच सकती हैं।

संदूक खोलने, संदूक में कपड़े तहाकर रखने, बोतलें खोलने आदि में पतियों से स्त्रियाँ चाहे जितनी सहायता ले सकती हैं। लड़कों को खिलाने में भी पति-लोग बड़े प्रवीण साबित हुए हैं।

रात के समय निर्जन स्थान में तो पति बहुत ही आराम देने वाला और मन बहलानेवाला पक्षी है। यदि घर में चोरों और बदमाशों का डर हो, तो पति को बिल्कुल ढाल ही समझिये। वह

घायल हो जायगा, पर स्त्री के शरीर पर जीते जी ज़रा भी चोट न आने देगा। यात्रा आदि में भी पति से अच्छा रक्षक नहीं मिल सकता।

पति अच्छे भी होते हैं और बुरे भी; पर उनके गुण अवगुण विवाह के पहले नहीं जान पड़ते। इसलिए कितनी ही स्त्रियों को विवाह के बाद बड़ा धोखा खाना पड़ता है। विवाह के पहले पतियों की पहचान करनी मुश्किल है और मेरी समझ में तो कभी भी नहीं हो सकती।

पति चाहे जैसा हो, वह है बड़े काम की चीज़। यदि कोई मुझसे पूछे कि क्या तुम बिना पति के भी रह सकती हो तो मैं फ़ौरन जवाब दूँगी कि—"नहीं, बिना पति के मेरे लिए एक मिनट भी जीना कठिन है।"

कदाचित् यही कारण है कि पति को शास्त्रों में देवता कहा गया है। पर वह है सब कुछ, देवता भी और राक्षस भी।

गार्हस्थ्य जीवन

वह मकान, जिसमें प्रेम का अभाव है, महल या क़िला हो सकता है; पर वह गृह (घर) नहीं कहला सकता। प्रेम एक सच्चे गृह का जीवन है। स्नेह-रहित घर में और प्राण-विहीन शरीर में कोई विशेष अन्तर नहीं है। एक अँगरेज़ कवि का कहना है—

"झोपड़ी में रहकर ईश्वर को डरना और थोड़े में निर्वाह करना तथा प्रेम-पूर्वक शाक-भाजी खाकर जीवन व्यतीत कर देना, कलह और क्लेश से युक्त धन-धान्य तथा नाना प्रकार के स्वादिष्ट पकवानों से पूर्ण महल में निवास करने से कई गुना अच्छा है।"

जो टूटी हुई झोपड़ी बेज़रर हो,
भली उस महल से जहाँ कुछ ख़तर हो।

गृह का महत्व प्राणियों को राजा, चोर, या डाकू के भय, या इसी प्रकार की अन्य आपत्तिओं से बचाने में नहीं है; मनुष्य को मानसिक वेदनाओं से रक्षित रखने में ही उसकी महत्ता है। जिसे संसार में रहना है, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भिन्न-भिन्न स्वभाववाले मनुष्यों में आना जाना है, क्रोध, अपमान, चिन्ता, आशा, निराशा इत्यादि विकारों से उसका मन खिन्न हुए

बिना नहीं रह सकता। यदि घरमें ऐसे खिन्न हृदय को सान्त्वता न मिली, चिन्ताएँ ज्यों की त्यों बनी ही रहीं, उनमें कमी होने के स्थान पर कुछ वृद्धि हो गई, तो उसका होना या न होना दोनों बराबर है। केवल मनोवाञ्छित कार्य्य की सिद्धि से ही सुख और शान्ति की प्राप्त नहीं हो सकती। सफलता घर के बाहर ही प्रसन्न रख सकती है, घर के भीतर उसे प्रेम का सहारा लेना पड़ेगा।

नन्दन-वन में ही क्यों न रहने का सौभाग्य प्राप्त हो जाय, मनुष्य अकेला नहीं रह सकता और न वह अकेले रहने के लिए बनाया ही गया है। उसका हृदय सदैव घर में रहना चाहिये। यह दूसरी बात है कि उसका काम घर के भीतर न हो। वह सदैव एकान्त में रहने के लिए नहीं बनाया गया और न सदैव चहल पहल के बीच में ही। दोनों बातें अच्छी हैं, और दोनों आवश्यक हैं। इसी बात को लक्ष्य करके अँगरेज़ी का प्रसिद्ध कवि टेनिसन कहता है—

Not wholly in the busy world, nor quite
Beyond it, blooms the garden that I love.

इसी बात को महात्मा तुलसीदासजी ने इस प्रकार कहा है—

घर कीन्हें घर जात है, घर छोड़े घर जाय।
तुलसी घर बन बीच ही, राम प्रेम पुर छाय॥

जो मनुष्य एकान्त जीवन को अच्छा समझते हैं, संसार जिन्हें झंझट और झगड़ों से भरा प्रतीत होता है, यदि विचार करके देखा जाय तो इनमें से अधिकांश मनुष्यों का और मेरी

समझ में तो सब का ही घर कलह की कालिमा से पुता मिलेगा। कोई संस्कृत कवि भी घर में प्रेम का अभाव देखकर कहता है—

माता यस्य गृहे नास्ति भार्य्याच प्रियवादिनी।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम्॥

क्योंकि कोई भी मनुष्य क्यों न हो, वह घर में माता से या यदि माता न हो तो स्त्री से तो अवश्य ही दो-चार प्यार के शब्द सुनने की अभिलाषा रखता है, पर जिसके माता न हो, और स्त्री भी—

"सासु के देखे सिंहनी सी जमुहाई लेत
खसम के देखे खाँव खाँव करि धावती"

की भाँति विधाता द्वारा ही विशेषकर बनाई गई हो, तो ऐसे घर से तो, जैसा कि उक्त श्लोक में कहा गया है, जंगल में जाकर जानवरों के साथ रहना ही अच्छा है। कदाचित् इसी प्रकार सामाजिक तथा गार्हस्थ्यजीवन कलह और द्वेष के कारण अशान्तिमय देखकर उर्दू के महाकवि ग़ालिब को कहना पड़ा है -

"रहिये अब ऐसी जगह चलकर, जहाँ कोई न हो।
हम सखुन कोई न हो, और हम ज़बाँ कोई न हो॥
बे दरो दीवार सा, इक घर बनाना चाहिये।
कोई हमसाया न हो, और पासबाँ कोई न हो॥
पड़िये गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार
और गर मर जाइये, तो नोहा ख़्वाँ कोई न हो॥"

किन्तु कदाचित् ग़ालिब ने यह नहीं विचारा कि नाज़ से भरी हास्य-वदना प्रकृति की सुन्दरता व मनमोहकता सबको सुख

नहीं पहुँचा सकती। जिसके हृदय में अनन्त तम-राशि है वह सूरज या चाँद की रोशनी का मज़ा कैसे लूट सकता है!

कुटुम्ब के लिए संघ, परस्पर स्नेह, तथा एक दूसरे के मानापमान का ध्यान, तीनों बातें जनेऊ के तीन तागों की भाँति अत्यन्त प्रयोजनीय हैं। यही सभ्यता का सार, बड़े-बड़े महात्माओं के उपदेश का निचोड़, हृदय की उदारता तथा स्वभाव की उच्चता है।

तुम्हारा घर कवियों को मुग्ध करदेनेवाला न हो, छोटा हो, भद्दा हो, स्वास्थ्यवर्द्धक न हो, शीत से पूर्ण हो; किन्तु यदि वह प्रेम से शून्य न हो तो तुमको उसी में स्वर्ग का सुख प्राप्त हो सकता है। घाघ कवि कहते हैं—

भुइयाँ खेड़े हर ह्वै चार,
घर ह्वै गिहिथिनि गऊ दुधार।
अरहर की दाल जड़हन का भात,
गूगल निँबुआ औ घिउ तात।
सरस अंड दही जो होय,
बाँके नैन परोसै सोय।
कहै घाघ तब सब ही झूँठा,
उहाँ छोड़ इहँवै बैकुंठा॥

यथार्थ में घर का यही अर्थ है। अधीरता, उलझन या किसी का निजपर अनुचित दबाव, इत्यादि बातों से मनुष्य इतना थककर चूर हो जाता है जितना वह कड़े से कड़े परिश्रम से भी नहीं होता। ऐसे लोग बहुत कम हैं, जिनका यही उद्देश्य हो कि वे दूसरों

को जानबूझ कर चिढ़ाया करें, फिर भी पारस्परिक द्वेष बढ़ता ही हुआ प्रतीत होता है। इसका कारण भाव-पूर्ण हृदय की कमी नहीं है। ख़ूब सोच विचारकर व्यवहार न करने से ही ऐसा होता है। प्रत्येक मनुष्य से—चाहे वह तुम से द्वेष ही क्यों न रखता हो, जब मिलो—प्रेम से, मुसकराते हुए तथा मीठे शब्दों के साथ। जो अपने को बहुत प्यारे हैं, केवल उन्हीं को प्यार करना काफ़ी नहीं है, या कम से कम दूसरों को—जिनके साथ तुम्हारा कुछ भी सम्बन्ध है—ऐसा भासित न होना चाहिये। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि लापरवाही से एक साधारण सी ही भूल पर चिढ़कर हम अपने अत्यन्त प्यारों को भी अप्रसन्न कर लेते हैं, जिससे जीवन की वे घड़ियाँ—जिनके बीतने का हमको पता ही न चलता—काटनी कठिन हो जाती हैं।

कभी-कभी जिनके हम अत्यन्त निकट रहते हैं, जिनसे हमारा रोज़ का काम है—उनसे ही हमारा हृदय बहुत दूर चला जाता है। एक घर में रहने के कारण बाहर से हम मिले हुए प्रतीत होते हैं, या ऐसा प्रतीत होने की चेष्टा करते हैं किन्तु हमारे हृदय एक दूसरे से खीरे की फाँक की भाँति परस्पर मिलते नहीं। गाड़ी के पहियों की लीक की भाँति अलग ही अलग चलते जाते हैं। और—

"कुछ न पूछो कैसी नफ़रत हमसे है,
हम हैं जब तक वह हमें क्यों कर मिलें!"

की भाँति सारी जीवन-यात्रा समाप्त हो जाती है, पर मिलते कभी नहीं। किसी ने ठीक ही कहा है—

दिल के फफोले जल उठे सीना के दाग़ से।
इस घर को आग लग गई घर के चिराग़ से॥

इस बात को बहुत कम लोग समझते हैं कि वार्तालाप भी एक कला है, और सम्पूर्ण कुटुम्ब केवल इस कला के द्वारा ही एक सूत्र में भली भाँति बाँधा जा सकता है। आप किसी मनुष्य को कितना ही प्यार क्यों न करें, यदि आप चिड़चिड़े हैं, छोटी-मोटी बातों पर भी रूठ जाते हैं, तो वह आपके असीम स्नेह को नहीं समझ सकता और न वह बदले में आपको उतना प्यार ही कर सकता है जितने की आप उससे आशा रखते हैं। यदि बोली में मिठास नहीं है तो केवल प्रेम कुछ नहीं कर सकता। हृदय की बात सुनने और कहने के लिए मधुर भाषण की उतनी ही आवश्यकता है जितना अँधेरी कोठरी में किसी वस्तु का पता लगाने के लिए चिराग़ की। बहुत से मनुष्य ऐसे हैं जो मन में उत्पन्न हुई भली या बुरी बात को ज्यों का त्यों कह डालने में ही अपना गौरव समझते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यह एक बहुत अच्छा गुण है और प्रत्येक मनुष्य में होना चाहिये; किन्तु चतुराई इसी में है कि सुननेवाले को बुरा न मालूम हो।

"न ब्रूयात् सत्यमप्रियं।"

कोई बात चाहे सर्वांश में सत्य हो, पर यदि वह अप्रिय है तो उसका न

कहना ही उचित है। हां, यदि बिना कहे काम नहीं चलता, तो उसे ऐसे ढँग से कहना चाहिये कि उसमें मनोरञ्जकता आ जाय।

विवाह से जीवन में एक बड़ा परिवर्तन उपस्थित हो जाता है। जहाँ अच्छी स्त्री का प्राप्त होना सबसे श्रेष्ठ आशीर्वाद है वहाँ बुरी स्त्री का प्राप्त होना सबसे बड़ा शाप भी है। हमारे देश में बाल-विवाह तथा पर्दे की प्रबल प्रथा के कारण भली या बुरी स्त्री अथवा भले या बुरे पति का प्राप्त होना मनुष्य के हाथ की बात नहीं है। जुए के खेल के समान जिसे जैसा दाँव पड़ गया उसको उसी के अनुसार रो-धोकर जीवन व्यतीत करना पड़ता है। फिर भी उस पुरुष को, जिसे पति होने का सौभाग्य प्राप्त है, यह सदैव ध्यान में रखना चाहिये कि वह बालिका, जिसे एक मात्र मेरे लिए अपने माता, पिता, भाई तथा प्यारे परिवार को छोड़ना पड़ा है, एक मातृ-पितृ-हीन अनाथिनी बालिका है। अधिक नहीं तो बदले में उसे इतना प्यार तो करना चाहिये कि उसे माता, पिता, भाई इत्यादि किसी के लिए रोना न पड़े।"

विवाहिता स्त्री को भी इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिये कि उसके पति का भविष्य-जीवन उसी के हाथ में है। चाहे वह पति को सूर्य्य के समान चमका दे और चाहे अन्धकार के समान काला कर दे। यदि पति पर-स्त्री-गामी है तो यह दोष उसका उतना नहीं है, जितना स्वयं स्त्री का। उसे अपने आचार व्यवहार से पति के हृदय में इतना घर कर लेना चाहिये कि वह अन्य स्त्री का ध्यान ही न करे। साथ ही उसे इतना रिझाना भी न चाहिये कि

वह विषयी हो जाय। कहते हैं—गोस्वामी तुलसीदास अपनी स्त्री के निम्न वाक्य से ही विषय-वासना को त्याग ईश्वर-भक्ति में लीन हुए थे—

अस्थि चर्म-मय देह मम तामैं जैसी प्रीत।
तैसी जौ श्री राम मँह होत न तौ भवभीत॥

तुलसीदासजी ने इसी वाक्य पर वैराग्य ले लिया। जिस भाँति वे स्त्री को प्यार करते थे, उसी भाँति स्त्री भी उनको प्यार करती थी। उसने असह्य विरह-वेदना सही, पर तुलसीदास को कभी घर नहीं बुलाया। तुलसीदास बड़े विषयी थे, उसे यह बात भली भाँति ज्ञात थी। उनका लोलुप हृदय अन्यत्र न मचल जाय, इसी बात को सोचकर उसने उनके पास यह दोहा लिख भेजा था—

कटि की खीनी कनक सी रहति सखिन सँग सोय।
मोहि फटे को डर नहीं अनत कटे डर होय॥

इस पर तुलसीदासजी लिखते हैं—

कटे एक रघुनाथ सँग, बाँधि जटा सिर केस।
हम तौ चाखा प्रेमरस पत्नी के उपदेस॥

धन्य है! आजकल हमारे देश के लिए इसी प्रकार की वासना-विरक्त स्त्रियों की आवश्यकता है।

जो दम्पति सुख-दुख में सदैव समान भाव से साथ-साथ उपासना करते हैं, व्रत रखते हैं, एक दूसरे से कोई बात छिपाते नहीं और न एक-दूसरे को भार-स्वरूप प्रतीत होते हैं तथा जिनको मृत्यु के सिवाय और कोई वस्तु इस संसार में एक-दूसरे से पृथक् नहीं कर सकती, उन्हीं को आनन्द है, उन्हीं को शान्ति है। उनके

सुख का यथार्थ वर्णन करने के लिए भाषा-कोष को भी उपयुक्त शब्द कदाचित् ही मिल सकते हैं। विवाह के बाद ही उनका एक नये प्रकार का जीवन आरम्भ हो जाता है। नयी नयी तरङ्गें हृदय में उठती हैं। आशा के घोड़े ज़मीन से उछलकर आसमान तक पहुँच जाते हैं। घर स्वर्ग बन जाता है। उस समय आप ही आप मुँह से निकलने लगता है—

चल ऐ बादे सबा आहिस्ता चल, बेदार होता है।
मना कर कलियों को चटखें न मेरा यार सोता है॥

इसके साथ ही यदि चिड़ियों की चहक के साथ नव-जात शिशु को संध्या के समय थपकी दे-देकर सुलाने का भी सौभाग्य प्राप्त हो, तो कहना ही क्या है। यही स्वर्ग का सुख है और यही जीवन का आनन्द। किन्तु यह, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, केवल प्रेम के द्वारा ही सुलभ हो सकता है। अतएव प्रत्येक गृहस्थ को, चाहे वह पुरुष हो अथवा स्त्री, यदि उसे अपना जीवन सुखमय बनाने की अभिलाषा है, तो उसे चाहिये कि वह शील व्यवहार का ऐसा दृढ़ जूता पहनकर चले कि प्रेम-पथ में आनेवाले सारे काँटे आपसे आप चूर्ण हो जायँ और उसे मालूम भी न हो।

———

क्या विवाह बन्धन है ?

मैंने एक नवयुवक को कहते सुना है—"यदि मेरा विवाह न हुआ होता तो मैं देश, जाति और समाज सब की उन्नति में हाथ बटा सकता था। विवाह ने पैर में बेड़ी डाल दी है। अब मैं किसी तरफ़ का नहीं रहा।"

यद्यपि मैंने यह बात अभी एक से अधिक युवक के मुख से नहीं सुनी, तथापि बिना सोचे नहीं रहा जाता कि आजकल देश में अधिकांश युवकों की ऐसी ही धारणा है। अधिकांश लोग सार्वजनिक कामों में भाग लेने से केवल इसीलिये डरते हैं कि उनके सिर पर सदैव स्त्री और बच्चों की चिन्ता सवार रहती है। वे कहते हैं—"यदि मुझे कुछ हो गया तो बच्चे किस को दादा कहेंगे और स्त्री किससे सेफ़्टीपिन (Safetypin) मँगवायेगी।" जहाँ-जहाँ हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े हुए हैं वहाँ अधिकांश हिन्दू इसीलिये दुम दबाकर घर में बैठ रहे कि बीबी के लहँगे में लैस (गोटा) न लग सकेगा और न बच्चे को कामदार टोपी आ सकेगी। एक महाशय ने मुझसे कहा—"मुसलमान गुंडे होते हैं, उन्हें बीबी-बच्चों की कोई परवाह नहीं होती और न उनके घर में ही सनहकी या चूहेदानी के सिवाय कुछ होता है। इसीलिये

वे सदैव लड़ने झगड़ने के लिए तैयार रहते हैं। मगर हम हिन्दुओं की वैसी स्थिति नहीं है, एक बटलोई बेचकर मुसलमान की सारी गृहस्थी ख़रीद सकते हैं। हमको अपनी इज़्ज़त का बड़ा ख़याल है।"

यहाँ हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े या उनकी पृथक्-पृथक् सामाजिक स्थिति पर विचार करने का मौक़ा नहीं है। ऊपर का विषय केवल यही दिखलाने के लिए आया है कि हिन्दू किस प्रकार अपनी कायरता (बुज़दिली) स्त्री और बच्चों के सिर मढ़ते हैं। इस कायरता को और अच्छी तरह समझने के लिए हमें उस समय के भारत की सामाजिक स्थिति पर ग़ौर करना होगा जब यह मही मुसलमानों के क्रूर शासन और अत्याचारों से पीड़ित थी। उस समय भी हिन्दू स्त्री-बच्चे धन-धान्य, जाति-कुटुम्ब, इत्यादि सब से बँधे थे, परन्तु तब कोई बीबी और बच्चों का स्मरण कर कभी घर में नहीं छिपता था। आक्रमणकारी शत्रु लोग सामना करते थे। स्त्रियाँ अपनी रक्षा का अन्य उपाय न देख आग में जल मरती थीं और यह कोई नहीं कहता था कि विवाह बन्धन है; क्योंकि विवाहित पुरुष अविवाहितों की अपेक्षा कहीं अधिक रणक्षेत्र की ओर अग्रसर होता है। विवाह से उसको वह ज्योति मिलती है जिसके सामने किसी प्रकार का अन्धकार टिक नहीं सकता। पुरुष यह सोचता था कि मैं युद्ध-क्षेत्र में जाता हूँ। विजयी होकर लौटूँगा तो गृहिणी स्वागत के लिये अपना हृदय बिछा देगी, मेरी आरती उतारेगी, मैं देवता बन जाऊँगा। यदि नहीं, तो स्त्री की मुझे क्या चिन्ता है। मैं मर जाऊँगा

तो भी कोई उसकी बेइज़्ज़ती नहीं कर सकता। चिता की ज्वाला उसकी रक्षा करेगी। अग्नि-शिखा उसे स्वर्ग के सिंहासन पर बैठाल देगी। वहीं मैं उससे मिल जाऊँगा और वह मुझे मिल जायगी।

पाठक यह न समझ लें कि यह लेख मैं हिन्दुओं को उत्तेजित करने के लिए लिख रहा हूँ। इसका तात्पर्य्य केवल इतना ही है कि विवाह मनुष्य को कर्त्तव्य-मार्ग पर अग्रसर होने से रोकता नहीं, प्रत्युत उसकी सहायता करता है। विवाह बेड़ी नहीं है, ढाल है। फिर आजकल लोग विवाह को बन्धन क्यों समझ बैठे हैं? इसका भी कारण है। आजकल हम जिसे विवाह कहते हैं या जिस रूप में विवाह को देखते हैं वह हमारे समाज का एक भयङ्कर रोग है। जिस प्रकार ग्रीष्म का प्यासा मृग लहराता हुआ सरोवर देखता है, उसकी ओर दौड़ता है, पर पानी नहीं पाता; समाज का यह भयङ्कर रोग भी मनुष्य को उसी प्रकार अपनी ओर आकृष्ट करता है और फिर अन्त में हताश होकर रहता है।

बहुत सी बातें ऐसी हैं जो समाज में बहुत दिनों से होती चली आती हैं; और मनुष्य उन सबको उसी प्रकार चलाने का इतना आदी हो गया है कि वह उनके गुण और दोष पर विचार ही नहीं करता। वर्तमान विवाह-प्रणाली भी उन्हीं बातों में से एक है। इसके लिए उतने ही सुधार की आवश्यकता है जितना एक पुराने और जर्जर मकान के खँडहर को गिराकर फिर से बनाने की।

आज कल वैवाहिक जीवन का उद्देश केवल इतना ही माना जाता है कि पुरुष स्त्री का पालन-पोषण और उसकी रक्षा करे तथा स्त्री पुरुष की सेवा करे। "Eat drink and be marry" "खाओ पियो—मौज उड़ाओ" इस विचारवाले लोगों को उक्त जीवन अब भी शिरोधार्य है। परन्तु जो इसके आगे भी कुछ देखता है, जिसे अपनी मौज का उतना ध्यान नहीं है जितना अपने पड़ोसी की उदासी का, वह इस प्रकार का वैवाहिक जीवन कैसे स्वीकार कर सकता है। वह तो अवश्य ही कहेगा कि विवाह बन्धन है और उसका कहना ठीक भी प्रतीत होता है। वह स्त्री इसलिये नहीं चाहता कि उसका पालन-पोषण करे बल्कि इसलिये कि वह जीवन-यात्रा में उसकी संगिनी हो, उसके साथ कंधे से कंधा मिलाकर निश्चित ध्येय की ओर बराबर बढ़ती रहे। परन्तु आजकल स्त्री और पुरुषों में इतनी असमानता हो गई है कि जीवन-यात्रा में दोनों एक ही साथ एक ही जुए में कंधा देकर नहीं चल सकते।

विवाह वह धुरी है, जिसपर स्त्री और पुरुष पहिये की भाँति घूमते हुए आगे बढ़ते हैं। जहाँ एक पहिया रुका, वहीं दूसरे को भी रुकना पड़ेगा। इसी रुकावट को लोग बन्धन कह बैठते हैं। हम इसे बन्धन नहीं कह सकते, यह अपनी अयोग्यता है; और प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह अपने समाज से इस कमज़ोरी की जड़ खोदकर फेंक देने का यथाशक्ति प्रयत्न करे।

———

नारी-जीवन की कुछ समस्याएँ

एक स्त्री के शब्दों में

यदि आप किसी हिन्दू रमणी से पूछें—"स्त्रियों का धर्म क्या है ?" तो वह बिना कुछ सोचे-समझे कह देगी :—

एकै धर्म एक ब्रत नेमा।
काय बचन मन पति पद प्रेमा॥

यदि मैं इस चौपाई के विरुद्ध कुछ कहूँ तो चारों तरफ़ से गालियों की बौछार आने लगेगी। इसलिये मैं भी स्वीकार किये लेती हूँ कि हाँ, हिन्दू स्त्रियों का धर्म यही है। यहाँ, मेरे लेख में, जो मछली दिखाई पड़े उसी को हड़प जानेवाले बगुले के समान नुकताचीनी करनेवाले आलोचकगण बिना कहे न रहेंगे कि जो आपका हृदय स्वीकार नहीं करता उसे आप क्यों स्वीकार किये लेती हैं ? यह तो आप में बड़ी कमज़ोरी है, इत्यादि। उनसे मेरी प्रार्थना है कि हम भारतीय महिलाओं को कोई भी सामाजिक आज्ञा, जिसे हमारा हृदय स्वीकार करे या न करे, बलपूर्वक स्वीकार करायी जाती है। उदाहरण के लिए ७ वर्ष की बालिका ७० वर्ष के बृद्ध के साथ विवाह दी जाती है और उसे आजन्म वैधव्य-वेदना सहनी पड़ती है। क्या कोई कह सकता है कि उस बालिका का हृदय इस वेदना को सहर्ष सहता है ? वह उस बुड्ढे

बाबा के पाषाण पदों में, जाल में फँसी चिड़िया की भाँति, भले ही बँधी रहे, उनमें एक व्रत, धर्म, नेम से प्रेम नहीं कर सकती। प्रेम आन्तरिक बन्धन है, वाह्य नहीं। समाज के भय से, लोक-लाज के भय से, घर से निकाल दिये जाने के भय से, निरावलम्ब हो जाने के भय से, वह अपनी मानसिक प्रवृत्तियों को दबाकर, दुर्दैव-प्रदत्त कष्ट-साध्य-जीवन व्यतीत करती है। धर्म का पालन नहीं करती। इसके अतिरिक्त :—

वृद्ध रोग वश जड़ धन होना।
अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किय अपमाना।
नारि पाव यमपुर दुख नाना॥

महात्मा तुलसीदास की उक्त चौपाइयाँ तथा इसी प्रकार की कितनी ही और कहावतें हैं जैसे—

पतिरेको गुरु स्त्रीणाम्।

इत्यादि उसे साँप की भाँति फन काढ़कर डराती रहती हैं। इसी भय से वे छुई-मुई की भाँति सिकुड़ी एक कोने में पड़ी रहती हैं। अब मुझे केवल इतना ही कहना है कि 'एकै धर्म ………पति पद प्रेमा' यदि आधुनिक हिन्दू नारी का धर्म मान लिया तो भी यह कहने की गुंजाइश है कि अधिकांश स्त्रियाँ भय वश ही इसका पालन करती हैं। जिस धर्म का पालन हम भय-वश करते हैं वह मनुष्य का धर्म नहीं हो सकता। उसमें पशुता के भाव हैं।

नरक-वासी होने के भय से पति-पदों से प्रेम करना यथार्थ प्रेम नहीं कहला सकता। यथार्थ प्रेम तो वह है जो नरक का भय दिखाने से भी कम न हो। एक बार एक अँगरेज़ महिला ने कहा—

"If your husband wants some one to obey him, tell him to buy a dog.

"यदि तुम्हारा पति चाहता है कि वह किसी के ऊपर हुकूमत करे तो उससे कहो कि वह एक कुत्ता ख़रीद ले।"

यह उदाहरण देकर मैं यह नहीं चाहती कि आप भी अपने पति से कुत्ता ख़रीदने को कहें। मेरा तात्पर्य्य यह है कि पति पत्नी पर हुकूमत करने के लिए नहीं, उसे प्यार करने के लिए बना है। जहाँ प्यार है, वहाँ हुकूमत नहीं चलती और न लघु व गुरु का भेद रहता है। प्रेम के साम्राज्य में छोटे-बड़े का भेद करना प्रेम की हँसी उड़ाना है, फिर स्त्री भी तो पूज्य ही कही गई है, अपूज्य नहीं। जहाँ 'पति पद प्रेमा' है वहाँ 'तिय पद प्रेमा' अनुचित नहीं है। नारी-जीवन की सब से बड़ी समस्या यही है जिसके हल करने की बड़ी आवश्यकता है।

गृहकार्य्य की कहानी भी कम कठिन नहीं है। भोजन बनाना, चौका-बर्तन करना इत्यादि स्त्रियों का वह काम है जो स्वयं परम पिता परमात्मा ने ख़ासकर उन्हीं के लिये बनाया है। अब से ५० वर्ष पहले विलायत में भी स्त्रियों का यही काम था। किन्तु अब यह बात नहीं रही। अब वहाँ यह काम स्त्री की इच्छा पर निर्भर है, वह करे-चाहे न करे। कोई उससे बलपूर्वक नहीं करा सकता।

मैं यह नहीं कहती कि यहाँ की स्त्रियाँ भी विलायती महिलाओं का अनुकरण करें; किन्तु उन्हें कार्य्य की स्वतंत्रता अवश्य मिलनी चाहिये। सामाजिक नियमों की सृष्टि देश और काल के अनुसार हुआ करती है। एक ही नियम सदैव काम नहीं दे सकता। जिस समय 'स्त्री गृह के भीतर काम करे और पुरुष बाहर' यह नियम बना था उस समय भारत सम्पूर्णतः खेतिहर देश था। अब कुछ और बात है। कलकत्ता, बम्बई जैसे शहरों में जाकर देखिये, कितनी ही स्त्रियों को अपनी जीविका-निर्वाह के लिए स्वतन्त्र रूप से प्रबन्ध करना पड़ता है। यदि उनके पीछे भी गृह-कार्य्य का पचड़ा लगा दिया जाय तो शायद वे कुटुम्ब, जिनका उनपर भार है, भूखों मरने लगें। मेरे पड़ोस में एक अध्यापकजी अपनी सहधर्मिणी के साथ, जो एक कन्या-पाठशाला में अध्यापिका हैं, रहते हैं। दस बजे दोनों आदमी खा-पीकर अपने अपने काम पर चले जाते हैं। शाम को चार बजे फिर आते हैं। लेकिन भोजन इत्यादि दोनों वक्त अध्यापिकाजी ही बनाती हैं। क्योंकि यह उन्हीं का कर्तव्य है। अध्यापकजी उस समय पतङ्ग उड़ाते हैं। ख़ूब! काम दोनों बराबर करते हैं, कमाकर भी दोनों बराबर ही लाते हैं। फिर भोजन एक ही को क्यों बनाना पड़े? जिस दिन अध्यापिकाजी बीमार हो जाती हैं, उस दिन बाज़ार से खाना आता है, किन्तु अध्यापकजी रसोई घर में नहीं जा सकते। अब ये बातें बहुत दिन तक नहीं चल सकतीं। जो स्त्रियाँ अपनी जीविका स्वयं उपार्जन करती हैं, उनके पति उनसे भोजन बनवाने

के कदापि अधिकारी नहीं है। यह दूसरी समस्या है जिसका हल करना गृहकार्य के पुराने नियमों में बिना कुछ अदल-बदल किये कठिन ही नहीं, असम्भव है।

"एक कमाता है और दस खाते हैं" की आवाज़ साफ़ सुनाई पड़ रही है। अब ऐसा कठिन ज़माना लगा है कि प्रत्येक गृह में प्रत्येक व्यक्ति को गृह के आर्थिक संकट से लड़ना पड़ेगा। एक की कमाई पर एक ही का निर्वाह बड़ी कठिनाई से होता है उसमें दस कहाँ से खायँगे ? जो बहुत अमीर हैं, उनकी बात जाने दीजिये। किन्तु अभी तक लकीर के फ़क़ीर लोग वही स्वप्न देख रहे हैं। इसके परिणाम-स्वरूप वेश्याओं की असाधारण वृद्धि किसी से छिपी नहीं है। वेश्याएँ कौन हैं ? कुछ को छोड़कर प्रायः सभी भूख और प्यास की सताई हमारी बहिनें हैं। उनमें भी विधवा बहिनों की संख्या अधिक है। क्योंकि उनका जीवन कुटुम्ब के सभी लोगों को भार-स्वरूप मालूम होता है। जब वे भाई-भौजाई अथवा सास-ससुर, देवर-देवरानी जेठ-जेठानी आदि के कटु व्यवहार नहीं सह सकतीं तो घर से निकल पड़ती हैं: किन्तु स्वावलम्बी न होने के कारण क्षुधा शान्त करने के लिए वेश्या-वृत्ति के सिवा और कोई उपाय नहीं सोच पातीं। समाज के गुण्डे, यौवन की मादकता, शिक्षा की कमी इत्यादि बातें भी उनको वेश्या बनाने में कुछ बाक़ी नहीं रखतीं। विधवाओं की समस्या हमारे लिए सब से भयंकर होती जा रही है। यदि हम बाल तथा वृद्ध-विवाह की प्रथा नहीं रोकते और न विधवा-विवाह का प्रचार

ही करते हैं तो हमको उचित है कि हम विधवाओं को इतना शिक्षित बनावें कि वे धर्म के मर्म को समझ जायँ तथा स्वावलम्बी बनकर रहें। यदि हम यह भी नहीं कर सकते तो निश्चय ही हम जान-बूझकर पतन की ओर जा रही हैं।

आजकल के प्रत्येक पुरुष यह चाहते हैं कि उनकी स्त्री बड़ी सुन्दर हो, परन्तु अपना मुँह शीशे में कोई नहीं देखते। मानों सुन्दर होना स्त्रियों ही के लिए आवश्यक है, पुरुषों के लिए नहीं। मैं सब सुन्दरता-लोलुप पुरुषों को विश्वास दिला देना चाहती हूँ कि उनके इस व्यवहार से स्त्री-समाज में भी शनैः शनैः एक इसी प्रकार की कुप्रवृत्ति उत्पन्न हो जायगी। पश्चिमी स्त्रियों में यह रोग बुरी तरह फैला हुआ है। जिन देशों में शारीरिक सौन्दर्य्य पर विवाह-बन्धन निर्भर है, वहाँ तलाक़ का भी काफ़ी प्रचार है। क्या आप चाहते हैं कि भारत में भी यही कुप्रथाएँ प्रचलित हो जायँ? मैं शारीरिक सौन्दर्य्य देखकर विवाह करने के लिए मना नहीं करती। पर आत्मिक सौन्दर्य्य भी कोई चीज़ है और विवाहबन्धन उसी पर अवलम्बित होना चाहिए। यह स्त्री के भावी जीवन की समस्या है जिस पर यदि अभी से विचार न किया गया तो इसकी भी वैसी ही भयंकर स्थिति हो जायगी, जैसी आजकल विधवाओं की है।

———

गृहलक्ष्मी कौन है ?

गृहलक्ष्मी—घर की लक्ष्मी, या कहिये घर की देवी, कौन है ? इस प्रश्न का उत्तर मानों सभी के ज़बान पर है। इसे लोगों ने इतना सरल समझ लिया है कि इसकी ओर किसी का ध्यान ही नहीं जाता। वार्तालाप के समय या अवसर पड़ने पर यदि इसका प्रसंग आया भी तो बात की बात में समाप्त हो जाता है। ब्रह्मा के वाक्य में जिसे देखो वही बोल उठता है कि "घर की लक्ष्मी स्त्री है।" हमारी बहिने कहेंगी कि इस प्रश्न की आवश्यकता ही क्या है ? यह प्रश्न तो स्वयं सिद्ध है। स्त्रियों के अतिरिक्त गृह की देवी हो ही कौन सकता है ?

हमारे देश के पुरुष परतंत्र हैं। दूसरे शब्दों में ग़ुलाम हैं। और स्त्रियाँ ग़ुलामों की भी ग़ुलाम। यही कारण है कि बेचारी अपना सर्वाधिकार खोये बन्दीख़ानों में पशुवत् जीवन बिता रही हैं। जो स्वयं स्वतंत्र नहीं है, वह दूसरों को स्वतंत्र बना ही कैसे सकता है ? यह कष्ट तो स्वाधीन विचार-धारा द्वारा ही बहाया जा सकता है, जिसका अभी उद्गार ही बंद है।

स्त्रियों के प्रायः सभी अधिकार पुरुष लोग हरण कर चुके हैं। देवी या लक्ष्मी, यही एक पद शेष है। किंतु इस पद पर कार्य्य

करने से होता ही क्या है। कार्य्य तो इतना बड़ा, पर वेतन कुछ नहीं, यह एक आश्चर्य की बात है। किन्तु इसे आश्चर्य न समझना चाहिये। जब से भारत में अँगरेज़ों का शासन हुआ है, तबसे इस प्रकार के कितने ही पद प्रचलित हैं। यदि उन सबका विस्तार-पूर्वक वर्णन किया जाय तो कदाचित् एक किताब बन जाय। इसे Honarary post (अवैतनिक पद) कहते हैं। मूर्ख लोग इस प्रकार के पद पाकर बहुत प्रसन्न होते हैं। काम निकालने का इससे सरल और क्या उपाय हो सकता है ? गृहलक्ष्मी के पद पर स्त्रियों को बैठा देना इसी प्रकार का एक अवैतनिक दर्जा है। इसके अतिरिक्त आजकल इसका और कुछ महत्व नहीं है। यदि इस पद में कुछ भी सार समझते और इस पद पर आसीन व्यक्ति के शिर पर श्रद्धा, भक्ति तथा सम्मान के दो-चार सूखे पुष्प भी चढ़े देखते तो क्या पुरुष स्त्रियों के इस अवैतनिक पद को भी अपहरण न कर लेते ? जिसने सर्वस्व हरण कर लिया उसे दो-एक बची बचाई वस्तुएँ छीन लेने में कितनी देर लग सकती है। इसीलिये तो कहता हूँ कि इस पद का कुछ भी महत्व नहीं है।

हमारी बहिनें कहेंगी कि वेतन मिले या नहीं, अवैतनिक ही सही, यह बात तो सिद्ध हुई कि गृहलक्ष्मी का पद स्त्रियों को ही प्राप्त है। मानता हूँ। किन्तु सभी स्त्रियाँ इस पद की अधिकारिणी नहीं हैं। इसके लिए योग्यता की आवश्यकता है। मूर्ख आदमी शिक्षक का कार्य नहीं कर सकता। जिसने गधे की पीठ पर भी हाथ नहीं रक्खा, उसके लिए घोड़े की सवारी करना असम्भव

है। जो दवा का नाम भी नहीं जानता, उसका वैद्य न बनना ही अच्छा है। किन्तु यह सब उसके लिए है जो समझदार हो। अंधे को दर्पण देना और न देना दोनों एक ही बात है। जो वस्तु सस्ती होती है वह सब को प्राप्त हो जाती है. मिट्टी का मोल नहीं होता। पानी सब को मिलता रहता है, कूड़ा करकट कोई भी उठा ले जाय, कौन रोकता है? इन्हीं कूड़ा-करकटों में अवैतनिक पद भी है, और अवैतनिक पदों में सब से सुलभ गृहलक्ष्मी का दर्जा। यही कारण है कि सभी स्त्रियाँ गृहलक्ष्मी बनी बैठी हैं, जिससे यथार्थ गृहलक्ष्मी का पता लगाना असम्भव सा हो गया है। इसीलिये तो मुझे पूछना पड़ा है कि गृहलक्ष्मी कौन है?

राज छिन जाने पर भी राजा राजा ही कहलायेगा और राजा होकर भी डाकू डाकू ही रहेगा। यह दूसरी बात है कि भय के प्रभाव से कोई बड़ाई या निन्दा न करे। समय आने पर राजा अपनी कृति के अनुसार खोये पद को प्राप्त कर सकता है, और डाकू यदि चरित्र-रक्षा न कर सका तो प्राप्त पद से भी हाथ धो सकता है। यही दशा हमारी देवियों की भी है। समय आने पर गृहलक्ष्मी पद का भी आदर होना स्वाभाविक है।

शीघ्र ही भारत को स्वराज्य मिलनेवाला है। उस समय कोई अवैतनिक पद न रहेगा, सभी को अपने-अपने कार्य्य का उचित पुरस्कार मिलेगा। उस समय गृहलक्ष्मी का ही सर्वश्रेष्ठ पद होगा; और उस पद की अधिकारिणी वे ही स्त्रियाँ हो सकेंगी जो सब प्रकार से उसके योग्य होंगी। तब जाकर पता चलेगा कि

कौन गृहलक्ष्मी है और कौन नहीं। अतः हमारी बहिनों के लिए यह प्रश्न अभी से हल कर लेना नितान्त आवश्यक है।

'गृहलक्ष्मी कौन है ?" यह जानने के पहले यह जान लेना परम आवश्यक है कि गृह क्या है ? ईंट, पत्थर या मिट्टी इत्यादि की बनी हुई वस्तु जिसमें मनुष्य रहता है, गृह नहीं हो सकता। मनुष्य का घर वही हो सकता है जिसकी दीवारें आशा की ईंटों से बनी हों, जिस पर निर्भयता का छप्पर चढ़ा हो, जिसके चतुर्दिक आनन्द का बाग़ लहलहाता हो, और उसमें मधुर भाषण के पक्के फल लगे हों, जिसके चूल्हे में कलह, द्वेष तथा फूट की लकड़ी जलती हो, जिसके आंगन में प्रेम-लता लहराती हो और उसमें छिप-छिपकर उत्साह तथा उद्योग बालक के स्वरूप में आँख-मिचौनी खेलते हों तथा उन पर सत्य-सूर्य की निर्भय-धूप पड़ती हो, जिसमें आत्म-त्याग की सनसनाती हवा समय समय पर न्याय की प्रबल मेघ-मालाएँ उड़ा लाती हो और आवश्यकतानुसार स्वत्त्व-रक्षा की उचित वृष्टि हो जाती हो। यथार्थ में गृह की यही परिभाषा है। बस इसी गृह की प्रबन्ध-कर्त्री को गृहलक्ष्मी कहते हैं।

———

मैं किस प्रकार सुन्दर बन गई ?

नीचे एक ऐसी स्त्री का बयान दिया जाता है जो पहले बहुत कुरूप थी, किन्तु थोड़े ही दिनों में अपने परिश्रम से परम सुन्दरी बन गई।

ईश्वर किसी स्त्री को कुरूप न बनाये। कुरूप स्त्री की बड़ी ही दुर्दशा होती है। न उसका पति उसे प्यार करता है, न कोई उससे प्रेम से बोलता है। मुझे इस प्रकार के कष्ट का पूर्ण अनुभव है। सन् १९०५ की बात है, जब मैं पहले पहल अपने ससुराल गई, क्या स्त्री क्या पुरुष सब मेरी हँसी उड़ाने लगे। किसी ने कहा—"भाड़ झोंकती थी," किसी ने कहा—" कोयले की खान में काम करती थी," किसी ने कहा—"सुअर चराती थी" इत्यादि। मेरे पति देव कहते थे—"मेरा जीवन नष्ट हो गया।" मेरे सास-ससुर कहते थे—"न मालूम किस पूर्वजन्म के फल से इस चुड़ैल ने घर में प्रवेश किया" इत्यादि। इन सब बातों को मैंने एक वर्ष तक धैर्य्य के साथ सहन किया। तत्पश्चात् अपने पिता के घर चली गई। वहाँ मुझे कुरूपा कहनेवाला कोई न रहा; किन्तु मेरी चिन्ता दूर न हुई। क्या मैं किसी प्रकार सुन्दरी नहीं बन सकती ? यही प्रश्न रह रहकर हृदय में उठने लगा। उस समय मेरी दशा पागलों की

सी होगई थी। जो भी चीज़ मैं देखती, उसी के विषय में सोचने लगती कि वह सुन्दर है या नहीं, और यदि नहीं तो क्यों नहीं ? जहाँ भी मैं जाती, वहाँ ही मैं सुन्दरता की तलाश करती। धीरे धीरे मैं कवियों की भाँति सौन्दर्य्य की उपासक बन गई। चन्द्रमा की रोशनी में, सूरज की धूप में, नदियों की लहरों में, पेड़ों की पत्तियों में, चिड़ियों के गीत में, बालक-बालिकाओं की मुस्कुराहट में, सर्वत्र मुझे सुन्दरता भासित होने लगी। ऐसी कोई वस्तु आँखों के सामने न आई जो मुझे कुरूप प्रतीत होती। सौन्दर्य्य-निधान प्रकृति की गोद में ही तो मेरा भी पालन-पोषण हुआ है, फिर मैं कुरूपा क्यों हूँ ? यह प्रश्न हृदय में उठते ही मैंने अनुभव किया—"मैं कुरूप नहीं हूँ।" मैं ने एक बड़ा दर्पण मँगवाया और प्रतिदिन घंटों उसमें अपना प्रतिबिम्ब देखना आरम्भ किया। रोज़ मुझे अपने शरीर में कुछ न कुछ विशेषता झलकने लगी। मेरी आत्मा ने कहा—"मैं किसी से घटकर नहीं हूँ।" मैं अपनी सखी-सहेलियों से अपनी तुलना करने लगी। उनके हाथों को देखती, फिर अपने हाथों को देखती और मन ही मन कहती—"दोनों में एक ही बात तो है।" एक दिन मैं आइने के पास खड़ी अपने कंधे की ओर झुककर देख रही थी कि मेरी एक सहेली ने कहा—"अरी ! तू तो आजकल बड़ी सुन्दर मालूम हो रही है!" मैंने कहा—"तुझ से भी अधिक" ! उसने कहा "हाँ ! हाँ !" इसके बाद मेरी सहेली भी आइने के पास आ गई। अब हम दोनों ने एक साथ आइने में एक-दूसरे को देखना आरम्भ किया।

मुझे मालूम हुआ कि मैं अपनी सहेली से सुन्दर हूँ। मैंने यह भी मालूम किया कि मेरी सहेली उदास सी हो गई है; क्योंकि उसने अपने शरीरमें कुछ कुरूपता का अनुभव किया है।

इसके कुछ ही दिनों बाद मैंने एक किताब में पढ़ा कि मनुष्य के विचारों का उसके शारीरिक सौन्दर्य्य पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। जिसके विचार पवित्र और उच्च होते हैं, वह गन्दे विचारवाले प्राणियों की अपेक्षा सुन्दर प्रतीत होता है। मैंने उसी किताब में यह भी पढ़ा कि मनःशक्ति का मनुष्य शरीर पर सब से अधिक प्रभाव रहता है। मनुष्य सच्चे हृदय से जो बनने की इच्छा करता है वह वैसा ही बन जाता है। इसी मनःशक्ति के प्रभाव से भिखारी राजा और राजा भिखारी बन जाता है। मैंने अब जाना कि मेरे शरीर की बनावट में सुन्दरता प्रतीत होने का कारण मेरी मनःशक्ति ही थी। मनःशक्ति अमूल्य वस्तु है। इसके द्वारा मनुष्य जैसा चाहता है, वैसा बन जाता है। यदि लोग तुमको कुरूप कहते हैं तो बुरा मत मानो। लोगों को कहने दो, तुम अपने दिल में अपने को कुरूप कहकर मत धिक्कारो! तुम यह अनुभव करो कि तुम सुन्दरी हो और यदि सुन्दरी नहीं हो, तो शनैः शनैः सुन्दरी बन जाओगी।

एक दिन की बात है, मैं अपने भाई के छोटे बच्चे को, जिसकी आयु दो बरस की थी, खिला रही थी। वह हँस रहा था, उस समय मुझे ऐसा मालूम हुआ मानों सुन्दरता स्वयं बालक के वेष में हँस

रही है। थोड़ी देर में उसी बालक ने मुझ से एक चिड़िया पकड़ने के लिये कहा पर मैं ने उसकी बातों की ओर किंचित मात्र भी ध्यान न दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि बालक ने कुप्पा सा मुँह फुला लिया और वह क़रीब-क़रीब रोने की स्थिति को पहुँच गया। अब मुझे वह पहले जैसा सुन्दर न मालूम हुआ। मैंने अनुभव किया कि प्रसन्नता भी एक प्रकार की सुन्दरता है। एक मधुर मुस्कराहट की रेखा कुरूप से कुरूप चेहरे को भी वैसा ही भला बना देती है जैसा जेठ में गरमी के कारण कुम्हलाये हुए वृक्ष को वर्षा ऋतु का पहला पानी। उस दिन से मैं सदैव प्रसन्न रहने लगी। मेरे माँ-बाप तथा सखी-सहेली मुझे मुस्कराते ही पाते।

इसके कुछ ही दिनों पश्चात् एक पड़ोसी के यहाँ उत्सव हुआ। उसमें एक वेश्या नाचने के लिए बुलाई गई। मुझे भी चिक की ओट में बैठकर उसकी मान-लीला देखने का अवसर मिला। मैंने अनुभव किया कि उस वेश्या के शरीर पर स्वाभाविक सौन्दर्य्य नहीं है। उसका मुख मलिन है; पर शृंगार, शरीर की हरकत, आँखों की चाल, कृत्रिम मुस्कराहट और कपड़े इत्यादि पहिनने तथा बाल सँवारने का ढंग ऐसा है कि लोग उस पर लट्टू हो रहे हैं। मैंने उसी दिन से अपने वेश, चाल-ढाल, बोल-चाल इत्यादि बातों को सुधारने की चेष्टा की, ज़रा-ज़रा सी बात पर मैं नाक-भौं सिकोड़ने और आँख मटकाने लगी। थोड़ी दूर जाने के लिए भी मैं अपने शरीर को बिना हिलाये-डुलाये न रहती। मुझे सफ़ाई का उस दिन से बड़ा ध्यान रहने लगा। यहाँ तक कि एक

दिन मेरी माँ ने कहा—"मेरी बेटी जितना साफ़ रहती है उतना कदाचित् ही कोई रहता हो।"

इसी अवसर पर मेरी जेठानी बहुत बीमार हुई। मेरी सास बुड्ढी थी। अतएव घर में छोटे-मोटे कामों में बाधा पड़ने के कारण मेरे श्वसुर ने मुझे बुला लिया। ससुराल पहुँचकर मैंने अपनी जेठानी की तन मन से सेवा की, जिससे वह इतनी प्रसन्न हुई कि फिर उसने कभी मुझे कुरूप नहीं कहा। एक रोज़ उसने कहा—देखो मैं कितनी कुरूप हो गई हूँ। बीमारी से सारी सुन्दरता नष्ट हो जाती है। तुमको लोग कुरूप कहते थे; पर तुम तो इस बार बड़ी ही सुन्दर मालूम होती हो। कदाचित् तुम कभी बीमार नहीं पड़ीं।" मैंने कहा—"दीदी कुछ फ़िकर न करो, पूर्ण स्वास्थ्यलाभ करने के पश्चात् फिर सुन्दर मालूम होने लगोगी।" दीदी की दशा देखकर मैं अपने स्वास्थ्य का बड़ा ध्यान रखने लगी।

इसी समय मुझे अपने पति-देव के चरणों के दर्शन करने का अवसर प्राप्त हुआ। मेरी जेठानी ने उनसे मेरी इतनी प्रशंसा की कि वे मेरा पूर्व स्वरूप भूल-सा गये। उन्होंने धीरे से मेरा मुख चूमकर कहा—"हम तुम्हारे इस सरल सौन्दर्य्य पर मुग्ध हैं।" मैंने मुस्कराकर अपना सिर नीचा कर लिया।

अब मुझे कोई कुरूप नहीं कहता। मैं अपनी कुरूप बहनों से प्रार्थना करती हूँ कि वे हताश न हों। मेरी ऊपर कही बातों पर ग़ौर करें और उसके अनुसार चलने की चेष्टा करें तो निस्सन्देह एक न एक दिन सारी कुरूपता जाती रहेगी।

सुन्दरी बनने के कुछ उपाय

लोग कहते हैं एक बच्चा होने के पश्चात् ही स्त्री का सौन्दर्य्य नष्ट हो जाता है। मैं इस बात को मानता हूँ कि सन्तानोत्पत्ति सौन्दर्य्य-विनाशक है। परन्तु स्त्री के सौन्दर्य्य नष्ट होने का केवल यही कारण नहीं है। असल बात यह है कि पितृ-गृह से श्वसुरालय जाते ही स्त्री वाह्य प्रकृति से पूर्णतः पृथक् हो जाती है। न उसे प्रकृति के सुन्दर-सुन्दर दृश्य देखने को मिलते हैं न शुद्ध हवा; न चलने-फिरने का मौक़ा, न खेलने-कूदने का अवकाश। यही कारण है कि पिता के घर में जो लड़की फूल सी खिली रहती है वही ससुराल में दो-एक साल रहने के बाद ही निकम्मी और कुरूपा समझी जाने लगती है।

प्रत्येक स्त्री को, जिसे सुन्दरी बनने की अभिलाषा है, वाह्य प्रकृति से नाता न तोड़ना चाहिये। भद्दा और फूला-फाला शरीर कोई पसन्द नहीं करता। दिन भर बैठे-बैठे शरीर मोटा हो जाता है और तोंद निकल आती है। शरीर का भद्दापन दूर करने की सबसे सरल तरकीब यही है कि नित्य कुछ न कुछ चला जाय। चलना भी एक प्रकार का व्यायाम है। इससे शरीर का ढीलापन नष्ट हो जाता है और वह कसा हुआ मालूम होने लगता है।

यह लिखने की आवश्यकता नहीं है कि जिस स्त्री का शरीर जितना ही कसा हुआ होगा वह उतनी ही सुन्दर मालूम होगी। पर कसा हुआ शरीर ही काफी नहीं है, उसमें लचक भी होनी चाहिये। जिस प्रकार लचीली-लता हवा के झोंके लगते ही एक अपूर्व सौन्दर्य्य धारण करलेती है, उसी प्रकार लचीला शरीर भी पैरों के हिलते ही कुछ का कुछ कर दिखाता है। लचीले शरीर की प्रशंसा करते हुए एक कवि तो यहाँ तक कहते हैं—

विजन बयारि लागे लचकत लंक है

"पंखे की हवा लगने से भी कमर लचक जाती है।" नाचने, दौड़ने, तैरने, पीठ की ओर झुकने और सीढ़ी पर बार-बार चढ़ने-उतरने से शरीर में लचीलापन आ जाता है।

एक अँगरेज़ महिला का कहना है—

"There is no perfect beauty without health".

"स्वास्थ्य के बिना पूर्ण सौन्दर्य्य असम्भव है।" आपने देखा होगा, कोई स्त्री कितनी ही सुन्दर क्यों न हो, जब वह बीमार पड़ती है तो सूखे हुए फूल की भाँति हो जाती है। उस समय आप कहेंगे—"इसमें हाड़, मांस तथा रुधिर के सिवाय और कुछ न था।" परन्तु वही जब पुनः स्वास्थ्य लाभ करती है और अपनी पूर्व सुन्दरता प्राप्त कर लेती है तो फिर ज्यों की त्यों हो जाती है। तब आप उसे फूलों का गुलदस्ता कहेंगे। हाड़-मांस का प्रश्न आँखों से ओझल हो जायगा। स्वास्थ्य से सुन्दरता तो बढ़ती ही

है, कुरूपता भी इससे छिपने लगती है। अपनी रहन-सहन ऐसी बनानी चाहिये कि कभी बीमार होने का अवसर ही न आये।

सुन्दरता बढ़ाने में मन से भी बहुत सहायता मिलती है। यह बात तो कोई अस्वीकार न करेगा कि मन के भाव चेहरे पर झलक जाते हैं। मन दुखी हुआ तो चेहरा उदास रहता है, मन सुखी हुआ तो चेहरा भी फूल-सा खिला रहता है। जिस प्रकार चन्द्र-किरणों से रात और रवि-किरणों से दिन की शोभा है, उसी प्रकार प्रसन्न मन भी शरीर के सौन्दर्य्य का रक्षक और वर्द्धक दोनों है। हँसने से भी आँसू निकलते हैं और रोने से भी। पर हँसी के आँसू चेहरे को चमका देते हैं और रुदन के आँसू उस पर कालिमा पोत देते हैं।

कहते हैं, एक बादशाह अपनी बेग़म को बहुत प्यार करता था और रोज़ उससे कहा करता था—"मैं तुझ पर मर रहा हूँ।" बेग़म ने बादशाह की परीक्षा लेने के बहाने एक रोज़ जुलाब ले लिया। दिन भर में १४-१५ दस्त आये। उसका शरीर आधा हो गया। फिर वह ८-१० दिन बिना खाये, नहाये, बाल सँवारे पड़ी रही और बादशाह को बुला भेजा। बादशाह आये। बेग़म ने कहा—अगर आप मेरे पास तीन दिन तक बराबर बैठे रहें तो मैं अच्छी हो जाऊँगी; नहीं तो कोई उम्मीद नहीं है। पर बादशाह ऐसा न कर सका; कुछ सान्त्वना देकर उसी समय जाने लगा। तब बेग़म ने कहा—

मुझपै तुम मरते नहीं थे, मर गये इन चार पर ।
नाज़ पर, अन्दाज़ पर, रफ़्तार पर, गुफ़्तार पर ॥

बादशाह को अपनी बात का स्मरण आया। पर अब उसकी परीक्षा हो चुकी थी।

यह एक कहानी है; पर इससे एक बड़ी शिक्षा ली जा सकती है। प्रत्येक स्त्री को यह ध्यान रखना चाहिये कि उसके नाज़, अन्दाज़, रफ़्तार, गुफ्तार का उसके पति पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। नाज़ सुकुमार शरीर की गति और अन्दाज़ तौल को कहते हैं। रफ़्तार चाल और गुफ्तार बात-चीत को। ये बातें बहुत कठिन नहीं हैं। ऊपर कहे अनुसार चलने से चारों सुलभ हैं। मधुर भाषण इन सबमें श्रेष्ठ गुण है। इसे तो प्रत्येक स्त्री को अपना स्वभाव ही बना लेना चाहिये।

कुरूप स्त्रियाँ भी सुन्दर बन सकती हैं

स्त्री का शरीर प्रौढ़ हो जाने के कारण बालक के शरीर जैसा मुलायम नहीं रहता। अतएव उसका टेढ़ापन दूर करना कठिन हो जाता है। जिस प्रकार पेड़ अपने शैशवकाल में जिधर झुक जाता है उधर ही झुका रहता है। इसी प्रकार मनुष्य-शरीर भी लड़कपन में माता-पिता की असावधानी से टेढ़ा-मेढ़ा होकर भद्दा हो जाता है। यह टेढ़ापन तो दूर नहीं हो सकता। हाँ, उसको छिपाने की चेष्टा की जा सकती है।

इंगलैंड इत्यादि पश्चिमी देशों में ज़ाहिरा कोई स्त्री कुरूप न मिलेगी। क्योंकि वे अपने कपड़ों को एक ऐसे अच्छे तरीक़े से पहनती हैं कि उसमें शरीर का बहुत कुछ भद्दापन छिप जाता है। चलने-फिरने,उठने-बैठने इत्यादि बातों में भी वे ऐसे नाज़ व नखरे काम में लाती हैं कि उसमें कुछ न कुछ सौन्दर्य्य की झलक आही जाती है। बोलना, हँसना, आँख चलाना इत्यादि बातों में भी वे बहुत कुछ सुधार कर लेती हैं। इसके अतरिक्त वहाँ कृत्रिम सुन्दरता की तो हद्द हो गई है। बड़ी-बड़ी बूढ़ी स्त्रियाँ बनावटी दाँत लगा एक प्रकार की दवा से त्वचा की सिकुड़न दूरकर और केशों में खिजाब इत्यादि करके जवान बनी फिरती हैं। जिसकी आँख ख़राब हुई, वह झट दूसरी आँख लगवाती है। नाक

ख़राब होते ही वह कटा दी जाती है और उस पर रबड़ की सुन्दर नाक लग जाती है। अँगुलियाँ, हाथ-पैर सभी कृत्रिम बन सकते हैं। हमारे देश में इस कृत्रिमता का, जहाँ तक मैं समझता हूँ, बिलकुल प्रचार नहीं है और मेरी राय में उसका न होना ही अच्छा है।

हमारे देश में एक कमी और है। वह यह कि यहाँ गोरा शरीर अधिक सुन्दर समझा जाता है। शहर की गलियों में रहने-वाली वाह्य प्रकृति से अनभिज्ञ एक बड़े वृक्ष के नीचे उगे हुए पौदे के समान पीली पड़ी जाती हुई ललनाएँ अपने को बहुत सुन्दर समझती हैं। किन्तु जब वे देखती हैं कि उनके पतियों का चित्त उनकी ओर बहुत ही कम आकर्षित होता है तब वे शनैः-शनैः अपनी कुरूपता का अनुभव करने लगती हैं। इन्हीं गलियों में कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी होती हैं जिनमें अभाग्यवश गोरेपन की कमी रहती है। वे अपने को श्याम शरीर देख अत्यन्त खिन्न होती हैं। समाचार-पत्रों में गोरे और .ख़ूबसूरत बनने की दवाइयों का विज्ञापन देख बिचारी किसी प्रकार परिश्रम से संचित की गई, अपनी सम्पत्ति का एक बड़ा भाग व्यर्थ व्यय कर डालती हैं पर कुछ लाभ नहीं होता। ऐसी स्त्रियों से यह विश्वास करने की प्रार्थना की जाती है कि गोरापन सुन्दरता बढ़ाने में सहायक हो सकता है, पर वह स्वयं सुन्दरता नहीं है। वास्तविक सुन्दरता बिना आरोग्यता के प्राप्त नहीं हो सकती। सुन्दरी बनने की अभिलाषा रखनेवाली देवियों को स्वास्थ्यरक्षा की ओर विशेष

ध्यान देना चाहिये । भोजन व रहन-सहन में सादगी कर देने तथा नित्य कुछ न कुछ शारीरिक व्यायाम करते रहने से स्वास्थ्य ठीक रहता है । हमारे देश में पर्दे की प्रथा का इतना भीषण प्रचार है कि अपनी महिलाओं को हम टहलने या वायु सेवन के लिए बाहर जाने की अनुमति नहीं दे सकते । अतएव घर ही में करने योग्य दो-एक कसरतों का उल्लेख अनुचित न होगा ।

दण्ड का नाम सभी ने सुना होगा । हमारे देश के मनुष्य इस कसरत को अधिक करते हैं । यह बहुत आसान भी होता है । इसमें पैर के पंजे और हाथ की गदेली ज़मीन पर रहती हैं और शरीर का शेष सम्पूर्ण भाग ऊँचा उठा रहता है । दोनों पैर मिले हुए रहते हैं; पर दोनों हाथों के बीच लगभग एक फ़ीट का फ़ासिला रखना होता है । जिसे दण्ड करना न आता हो उसे पहले झुकना चाहिये । फिर धीरे-धीरे सीना नीचे लाना चाहिये, यहाँ तक कि वह देखने में ज़मीन से मिला हुआ मालूम होने लगे । फिर सिर व सीना इसी प्रकार ऊपर को लेजाना चाहिये । इस बार कमर के नीचे का भाग पृथ्वी से मिला हुआ प्रतीत होगा । फिर वह हिस्सा भी जल्दी से ऊपर ले जाकर पहली पोज़ीशन (अवस्था) में आ जाना चाहिये । इसी प्रकार प्रातः और सायं प्रति दिन करने का अभ्यास डालना चाहिये । जहाँ तक हो, खुली हवा में ही यह कसरत करनी चाहिये । धीरे-धीरे इसका अभ्यास बढ़ाते जाना चाहिये । जो स्त्रियाँ लज्जावश या और किसी

अड़चन के कारण दण्ड नहीं कर सकतीं उन्हें प्रातः और सायं पवित्र होकर प्राणायाम करना चाहिये।

प्राणायाम की सब से सरल तरकीब यह है कि पल्थी मार कर किसी पवित्र आसन पर बैठ जाओ। दाहिने हाथ के अँगूठे से नाक का दाहिना छेद दबा दो और बाएँ छेद से धीरे-धीरे साँस खींचो। जब अपनी शक्ति के अनुसार साँस खींच चुको तो उसी हाथ के बीच की अँगुली से नाक का बाँया छेद भी दबा लो। फिर तब तक दबाये रहो जब तक ऊब न मालूम हो। तत्पश्चात् छोड़ दो और धीरे-धीरे दाहिने छेद से साँस बाहर निकाल दो। फिर यही क्रिया दाहिने ओर से करो। बैठने में एक बात का ध्यान रखना चाहिये कि सर ऊँचा उठा रहे और सीना आगे को बढ़ा हो। जो महिलाएँ प्राणायाम करते भी शरमाती हों या उन्हें इसके लिए एकान्त स्थान न मिलता हो उन्हें शाम को सोने और प्रातःकाल उठने से पहले यही क्रिया लेटे-लेटे बिस्तर पर करनी चाहिये। हाँ, उस समय भी इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि पेट के बल या करवँट से न लेटा जाय। केवल चित्त लेटना ही श्रेयस्कर होगा। स्नान इत्यादि से भी कभी न चूकना चाहिये।

केशों के विषय में इतना ही लिखना काफ़ी है कि केशों को कसकर कदापि न बाँधना चाहिये और न उनमें तेल इतना अधिक लगाना चाहिये कि वह चूता रहे और कपड़े गन्दे होते रहें। जहाँ तक हो, उनमें कंघी रोज़ करनी चाहिये और नित्य उनको

एक नये ढङ्ग से बाँधना चाहिये। कभी-कभी उनको एकदम खुला रख छोड़ना भी लाभदायक होता है।

भौंहों को मुँह धोते समय इधर-उधर रोज़ घुमा देना चाहिये। बरोनियों के सिरों को सप्ताह में एक बार ज़रा-ज़रा सा कैंची से कतर देना चाहिये। ऐसा करने से वे काली और घनी हो जायँगी। आँखें किसी-किसी की बहुत छोटी होती हैं। जो आँख जितनी ही छोटी होगी उसमें उतनी ही कुरूपता भी होगी। आँखें बड़ी तो नहीं की जा सकतीं। हाँ, ऐसी तरकीब की जा सकती है कि वे छोटी न मालूम हों। आँखें खोलते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि मस्तक की त्वचा न सिकुड़े। ऐसी दशा में जिधर देखना हो उधर बजाय आँख घुमाने के सम्पूर्ण सिर को घुमाकर देखना चाहिये। छोटी आँखें काजल या सुरमा इत्यादि लगाने से और बुरी मालूम होती हैं। ऐसी किसी वस्तु को न लगाना ही अच्छा है। मस्तक पर भी टिकुली, बेंदी, बिन्दी, इत्यादि कोई वस्तु, यदि मस्तक कम चौड़ा हो तो, न लगानी चाहिये; बल्कि बालों को इतना ढीला रखना चाहिये कि देखने वाले को यह मालूम हो कि मस्तक का अधिकांश भाग केशों में छिपा है। नाक में कोई आभूषण न पहनना चाहिये। यदि बिना पहने न रहा जाय तो बाँई ओर एक छोटी सी फुलिया या लौंग काफ़ी है। कान तो आभूषणों से बिल्कुल बचे रहने चाहिये। कुछ नीच जाति की या ग़रीब लोगों की स्त्रियाँ कर्णफूल पहनती हैं। वह बहुत ही बुरा मालूम होता है। गाँवों में प्रायः देखा गया

है कि लड़कियाँ लकड़ी डाल-डालकर कान के छिद्र इतने बढ़ा लेती हैं कि उनमें दो-दो अँगुलियाँ एक साथ चली जाती हैं। बड़ी होने पर इन्हीं में वे तरकी या ढार (कर्णफूल) पहनती हैं। लड़कपन से ही माँ-बाप को लड़कियों की इस आदत को रोकना चाहिये। मुसलमान स्त्रियाँ सम्पूर्ण कान में बालियाँ धारण करती हैं। किसी-किसी कान में तो ५० बालियाँ तक गिनी गई हैं। कुछ हिन्दू स्त्रियाँ भी अपनी मुसलमान बहनों की इस बुरी आदत का अनुकरण करने लगी हैं। मेरी समझ में इससे कोई लाभ नहीं है। दाँत चाँदी से झलकते व निखरे हुए ही भले मालूम होते हैं, मिस्सी लगाना या पान-तम्बाकू इत्यादि इतना खाना कि दाँत काले पड़ जाँय, उचित नहीं है। दाँतों को कदापि काला या मैल-युक्त न होने देना चाहिये। दाँतों का वास्तविक सौन्दर्य्य यही है कि हँसते समय या जब कभी वे खुलें, मोती के समान उज्ज्वल प्रतीत हों। गाल चुचके हुए बहुत बुरे जान पड़ते हैं। जो स्त्री जितना ही ब्रह्मचर्य्य का पालन करती है, उसके गाल उतने ही भरे हुए दिखाई पड़ते हैं।

संयम से रहने में गालों का चुचकना बन्द हो जाता है तथा मुहाँसे, झाँई इत्यादि चेहरे के अन्य विकार भी दूर हो जाते हैं। गर्दन पतली और लम्बी भली मालूम होती है। जिसकी गर्दन मोटी हो उसे ऐसे गहने न पहनने चाहिये जो गले में ही अटके रहते हैं। छोटी गरदनवाली स्त्रियों को लटकते हुए गहने जैसे हार, या माला इत्यादि पहनना चाहिये।

हाथ-पैर और चेहरा तथा केश छोड़कर स्त्री-शरीर का शेष सम्पूर्ण भार वस्त्र से ढका रहता है। अतएव वस्त्र की सुन्दरता में ढँके हुए शरीर का भद्दापन छिपा देना कोई बड़ी बात नहीं है। केवल कपड़ों के पहनने का ढंग अच्छा होना चाहिये तथा कपड़े मैले न होने चाहिये। विलायती स्त्रियाँ तो पैरों में मोजे और हाथों में दस्ताना पहनकर हाथ-पैर के कितने ही दोष छिपा लेती हैं। पर हमारे देश में वैसी प्रथा नहीं है। मेंहदी इत्यादि लगाने का रिवाज यहाँ भी है, पर उससे बनावट पर कुछ असर नहीं पड़ सकता। अँगुलियों में आभूषणों की बहुत कमी होनी चाहिये। नाख़ून इत्यादि बाक़ायदा कटते रहने चाहिये तथा उनपर मैल न जमना चाहिये। कपड़ों से ढका हुआ शरीर भी, कपड़े महीन हों या मोटे, कुछ न कुछ मालूम ही होता है। उसको इस प्रकार रखना चाहिये कि यत्र-तत्र कपड़ों के शरीर में चिपट जाने से उसमें कोई अधिक दुबलेपन या अधिक मोटेपन का अनुमान ही न कर सके।

इसके अतिरिक्त रहन-सहन का भी सुन्दरता पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। शरीर को कितने ही सुन्दर वस्त्राभूषणों से क्यों न अलंकृत कर दिया जाय, चाल-ढाल उसकी मूर्खता सूचित किये बिना न रहेगी। अतएव जहाँ तक हो सके, हृदय को पवित्र भावों से भरना चाहिये। कभी शोक या चिन्ता न करनी चाहिये।

ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि चेहरे पर सदैव प्रसन्नता क्रीड़ा करती रहे। होठों पर मुस्कराहट और आँखों में लज्जा का भाव बना रहे। विचार उच्च हों और उनमें अच्छे भावों की कमी न हो।

इसके साथ ही साथ सुन्दर चित्रों को देखना चाहिये और एकान्त में उन्हीं का अनुकरण करना चाहिये। उसी प्रकार खड़ा होना चाहिये, उसी प्रकार बैठना चाहिये और उसी प्रकार चलने की चेष्टा करनी चाहिये। इसके सिवा अपनी समझ में जो स्त्रियाँ अपने से अधिक सुन्दर हों उनके भी चालढाल इत्यादि सुन्दर गुणों का अनुकरण करना उचित है।

तुम कितने बड़े दर्पण में अपना मुँह देखती हो ?

एक प्रमदा के अनुभव

बहुत कम स्त्रियाँ ऐसी हैं जो दर्पण में मुँह के अतिरिक्त शरीर का अन्य भाग भी देखती हों। इसलिये नहीं कि उनको मुँह के सिवाय और अङ्गों की सुन्दरता का ध्यान ही नहीं है, किन्तु इसलिये कि वे उनको बिना दर्पण के भी देख सकती हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि बड़े-बड़े दर्पणों का व्यवहार ही स्त्री-समाज से उठ गया। मेरे कहने का यह अर्थ न लगा लेना चाहिये कि हमारे देश में लोग बड़े आकार के दर्पण रखते ही नहीं। रखते हैं अवश्य, पर शारीरिक सौन्दर्य्य की जाँच के अभिप्राय से नहीं। बड़े शीशे यहाँ केवल कमरों की सजावट के लिए होते हैं। यह दूसरी बात है कि कोई पान खाकर उनमें अपना मुँह देख ले।

उस दिन मेरी एक सहेली ने एक धुँधले दर्पण के सामने अपनी नथ सीधी करते हुए कहा—"क्या ही अच्छा होता, यदि हम अपना मुँह भी बिना दर्पण के देख लेतीं।" इसीसे पाठक अनुमान कर सकते हैं कि हमारे यहाँ दर्पण में केवल मुँह देखने

का रिवाज है। मेरा यह मतलब नहीं है कि आप जो अङ्ग बिना दर्पण के देख सकती हैं उसे भी दर्पण में ही देखा करें, बल्कि यह कि मुँह को समस्त शरीर के साथ देखें। अर्थात् आप ऐसे दर्पणों में मुँह देखने की चेष्टा किया करें जो पैर से सिर तक साफ़-साफ़ दिखा सकें।

"केवल मुँह से ही दर्पण का सम्बन्ध है—" इसी प्रकार के भावों ने दर्पण की आकृति को छोटा करवा दिया है। यहाँ तक कि छोटे होते-होते रुपयों के आकार तक के दर्पण बनने लगे। एक बार मैं गङ्गा-स्नान करके अपनी एक सहेली के साथ लौट रही थी। साथ में उसकी माँ भी थी। रास्ते में एक बिसाती की दूकान से मेरी सहेली एक बड़ा सा दर्पण ख़रीदने लगी। इस पर उसकी माँ ने कहा—"बड़ा दर्पण लेकर क्या करेगी? हाथी-घोड़े तो देखने नहीं हैं। देखेगी केवल अपना मुँह। छोटे से छोटा दर्पण भी लेगी तो भी मुँह साफ़ दिख जायगा। फिर व्यर्थ में अधिक मूल्य लगाकर बड़ा दर्पण क्यों ख़रीदती है?"

प्यारी बहनो! जब तुम दर्पण हाथ में लेती हो तो क्या देखती हो? यही न कि आँखों का काजल फैल तो नहीं गया? मस्तक पर लगी बिन्दी मिट तो नहीं गई? पानों की लाली होठों पर बनी है या नहीं? दाँतों पर मैल तो नहीं जम रहा है? सम्भव है, यह भी देख लेती हो कि बाल ठीक सँवारे गये हैं या नहीं? पर इतना ही देखना काफ़ी नहीं है। 'तुम किस प्रकार दिखाई पड़ती हो'—यदि इसका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने की

अभिलाषा है तो अपना सम्पूर्ण शरीर एक साथ ही देखा करो। जिस दर्पण में तुम अपना केवल मुँह देखती हो, सम्भव है वह तुम्हारे सामने एक मनोरम छवि नचा दे। पर इसके साथ ही यह भी सम्भव है कि जिस दर्पण में तुम मुँह के साथ सम्पूर्ण शरीर देखो वह कुछ दूसरी ही बात बतलावे। इसीलिये मैंने यह प्रश्न किया है कि तुम कितने बड़े दर्पण में अपना मुँह देखती हो। और इसीलिये तुमसे सिर से लेकर पैर तक सम्पूर्ण शरीर को एक साथ देखने की प्रार्थना करती हूँ।

एक अँग्रेज़ महिला का कहना है—

"एक बार मुझे अपने ही लिए हैट (टोप) लेने बाजार जाना पड़ा। जिस दूकान पर मैं गई, वहाँ जो दर्पण था, वह बहुत ही छोटा था। यद्यपि छोटे दर्पण में मुँह देखने की मेरी आदत नहीं थी, पर बड़ा दर्पण न मिल सकने के कारण मैंने उसी में हैट लगा चुकने पर मुँह देखा। उस समय मुझे वह हैट बड़ी ही भली मालूम हुई। पर ज्यों ही मैं घर आई और बड़े दर्पण के सामने वही हैट लगाकर खड़ी हुई तो मेरा चेहरा बहुत ही भद्दा दिखलाई पड़ा। इस बात से मुझे बहुत ही दुःख हुआ ; पर मेरे पति, जो एक अच्छे Actor (नाट्यकार) थे और जिन्हें इन बातों की अच्छी जानकारी थी, मुझे सान्त्वना देते हुए बोले— "You must have tried it on at the shop before a small mirror" "तुमने इसे लगाकर दूकान में छोटे दर्पण में मुँह देखा होगा।" मुझे अपनी ग़लती पर बड़ा पछतावा हुआ।

मैं फ़ौरन दूसरी दूकान में गई जिसमें एक बड़ा दर्पण था। मैंने उसके सामने खड़ी होकर टोपियाँ आजमाईं और एक अपने माफ़िक ख़रीद ली। इस बार घर आने पर जब मैं फिर पूर्व की भाँति अपने बड़े शीशे के सामने खड़ी हुई तो मैं बहुत ही भली मालूम हो रही थी।"

हमारे देश में स्त्रियाँ हैट नहीं लगातीं, पर सिर का शृंगार करती हैं, जो केवल मुँह और सिर देखकर ही जैसा चाहिये वैसा सुघड़ नहीं बनाया जा सकता जब तक कि उसके साथ ही साथ सम्पूर्ण शरीर की लम्बाई-चौड़ाई और कपड़ों के पहनने के ढंग पर भी एक बार दृष्टिपात न कर लिया जाय। किसी स्त्री के शरीर पर खुले बाल शोभा देते हैं, किसी के बँधे, किसी के फूलों से गुँधे, किसी के माँग के रूप में सँवारे इत्यादि। इन बातों की जाँच किसी बड़े आकार के दर्पण के सामने ही सम्भव है।

स्त्रियाँ पीछे की ओर से कैसी दिखलाई पड़ती हैं, सम्भव है, आपने इस पर कुछ विचार न किया हो। परन्तु यह भी ध्यान में रखने योग्य बात है। कुछ स्त्रियाँ पीछे से ऐसी मालूम होती हैं जैसे शुतुर्मुर्ग। वे समझती हैं कि जो वे नहीं देख सकतीं वह कोई भी नहीं देख सकता। बाल को ही लीजिये, आगे से वे अच्छे मालूम हो सकते हैं, परन्तु पीछे से वे ही ठीक तरीक़े से न सँवारे जाने के कारण कभी-कभी सिर की शोभा को बिगाड़ते से प्रतीत होते हैं। पीठ या बग़ल का मोड़ भी कभी-कभी शरीर की सारी शोभा बिगाड़ देता है और कभी-कभी यही बिगड़ी हुई

शोभा के बनाने का कारण बन जाता है। जिन स्त्रियों को उच्च कोटि के नृत्य देखने का मौक़ा लगा होगा या जिन्होंने सिनेमा भी देखे होंगे, उनसे यह बात छिपी न होगी कि साधारण से साधारण मोड़ भी शारीरिक सौन्दर्य्य में घोर परिवर्तन उपस्थित कर देते हैं। दो बड़े-बड़े दर्पण आगे-पीछे धरकर पीठ देखी जा सकती है। नयी साड़ी धारण करने के बाद तो अवश्य ही एक बार पीठ की ओर देख लेना चाहिये।

दर्पण ख़रीदने में किफ़ायत-शारी ठीक नहीं। सस्ते दर्पणों में चेहरा भी ठीक-ठीक नहीं दिखाई देता। किसी में मुँह लम्बा, किसी में चपटा, किसी में मोटा और किसी में पतला दिखाई पड़ता है। किसी दर्पण में नाक बड़ी दिखाई देती है और किसी में कान। इन सब ख़राबियों से बचे रहने के लिए सदैव सच्चे दर्पणों को ही अपने शारीरिक सौन्दर्य्य की जाँच का साधन बनाना चाहिये।

बहुत मोटी और बहुत दुबली औरतें

योंतो आपको मोटी और दुबली औरतों में ज़मीन-आसमान का अन्तर दिखाई पड़ेगा, पर वास्तव में दोनों की चिन्ताएँ एक ही प्रकार की हैं। क्योंकि मोटापन या दुबलापन दोनों शारीरिक सौन्दर्य्य के घातक हैं। फिर सौन्दर्य्य के लिए दोनों का चिन्तित रहना स्वाभाविक ही है।

इस लेख में मैं मोटी औरतों को दुबली और दुबली औरतों को मोटी होने की तरकीब बतलाऊँगा। कहिये, सरल से सरल तरकीब बताऊँ और कहिये मुश्किल से मुश्किल। मैं सब प्रकार की तरकीबें जानता हूँ। आप मुश्किल तरकीबों से घबड़ा न जायँ इसलिये पहले सरल तरकीब का बताना ही उचित होगा।

मोटी औरतों के दुबली होने और दुबली औरतों के मोटी होने की सब से सरल तरकीब यही है कि मोटी औरतें ख़ूब खुलकर रोयें और दुबली औरतें ख़ूब खुलकर हँसे। यह न समझियेगा कि मैंने यह तरकीब अटकलपच्चू बताई है। बड़े से बड़े वैद्य और डाक्टरों का भी यह मत है। विश्वास न हो तो किसी डाक्टर से पूछ लीजिये।

आप कहेंगे—जनाब किसी मुहल्ले में मोटी औरतों की तादाद ज़्यादा हुई और सबने रोना शुरू कर दिया तो; या किसी मुहल्ले में दुबली औरतों की तादाद ज़्यादा हुई और सबने हँसना शुरू कर दिया तो? तो क्या? आपको जो मुहल्ला पसन्द आये, उसीमें जा बसियेगा। मगर जनाब, मुझे इस बात का पूरा तजुर्बा है कि मोटी औरतें कभी रो नहीं सकतीं और दुबली औरतें कभी हँस नहीं सकतीं। यदि विश्वास न हो तो किसी मोटी औरत से रोने के लिए और दुबली औरत से हँसने के लिए कहकर देख लीजिये। दोनों ही आपको दुत्कार देंगी।

ख़ैर, मेरे पास सैकड़ों तरकीबें हैं। दूसरी लीजिये। मोटी औरतें ख़ूब जागें तो वे ज़रूर दुबली हो जाँय और दुबली औरतें ख़ूब सोयें तो वे मोटी हो जाँय। यह भी अनुभूत नुसख़ा है। पर न मोटी औरतें मनमाना जाग सकती हैं और न दुबली औरतें मनमाना सो सकती हैं। आप कहेंगे, यह दूसरा नुसख़ा भी बेकार है। हुई है। तीसरा लीजिये।

मोटी औरतें कुछ रोज़ न खायँ और काम करें, दुबली औरतें कुछ रोज़ ख़ूब खायँ और आराम करें। मगर जनाब, यह और भी कठिन जान पड़ेगा।

लोग कहते हैं, जब दो भिन्न-भिन्न प्रकृति के मनुष्य एक साथ रहते हैं तो दोनों का एक-दूसरे पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। बात ठीक जान पड़ती है। पानी के प्रभाव से आग ठंढी होजाती है और आग के प्रभाव से पानी गरम हो उठता है। कुछ मोटी

और कुछ दुबली औरतें कुछ दिनों तक एक साथ रहकर देख सकती हैं। सम्भव है, मोटे शरीर में कुछ दुबलापन दौड़ जाय और दुबले शरीर में कुछ मोटापन आजाय। मगर यह तरकीब भी दुस्साध्य होगी; क्योंकि मोटी और दुबली औरतों में उतना ही बैर है, जितना आग और पानी में। यहाँ एक बात का ध्यान रखना चाहिये। यदि मेरे इस नुसखे के अनुसार कुछ मोटी और दुबली औरतें एक साथ रहें तो उनमें सास-पतोहू का रिश्ता कदापि न हो। नहीं तो सारे कुटुम्ब की आफ़त आ जायगी।

आप तरकीबें सुनते सुनते ऊब जाइयेगा और तरकीबें ख़तम न होंगी, इसलिये नीचे कुछ मुश्किल नुसख़े देकर लेख समाप्त करता हूँ।

बहुत मोटी और बहुत पतली दोनों प्रकार की औरतें सूरज निकलने से एक घंटे पहले उठें और मुँह-हाथ धोकर किसी बाग़ या मैदान की ओर टहलने चली जायँ; कम से कम दो मील रोज़ चलें। दोनों लेटकर पढ़ना, मिर्च खटाई खाना बन्द करदें। दोनों सब प्रकार की चिन्ताएं छोड़ दें, दोनों ठंढे पानी से स्नान करें, दोनों संयम से रहें। सोने से पहले दुबली औरतें कम से कम आध सेर रोज़ दूध पियें, पर मोटी औरतें केवल पानी। दूध की कसर मोटी औरतें पानी पीकर निकाल सकती हैं। मोटी औरतें अनुभव करें कि उनकी कमर पतली हो रही है और पतली औरतें अनुभव करें कि उनकी चाल देखकर लोग उन्हें अपने दिल में ज़रूर गजगामिनी कहते होंगे।

ऊपर कहे हुए मेरे सभी नुसख़े अनुभूत हैं, सभी से अपूर्व लाभ होने की सम्भावना है। यदि इन नुसख़ों से भी मोटापन और दुबलापन दूर न हो तो हताश होने की सम्भावना नहीं है। मैं आपका परिचय एक ऐसी वैद्य-धुरन्धरा से करा दूँगा जो रोग और रोगिनी दोनों को साथ ही साफ़ कर जाती हैं! ठीक ही तो है—"न रहेगा बाँस, न बजैगी बाँसुरी"!

मोटा शरीर पतला कैसे हो सकता है ?

[वैसे तो स्त्रियों के सामने अनेक समस्याएँ हैं। पर सब मे बिकट समस्या यह है कि क्या किया जाय कि शरीर मोटा न हो। मोटा शरीर देखने में भद्दा लगता है और आजकल भद्देपन की क़दर नहीं है। स्त्रियों को इसी भद्देपन से बचाने के उद्देश्य से एक अनुभवी महिला के विचार यहाँ दिये जाते हैं।]

प्रकृति ने जिनको पतला शरीर दिया है वे बड़ी भाग्यवान हैं; पर जिनके ऊपर प्रकृति ने कृपा नहीं की उन्हें कड़ी मेहनत करनी चाहिये, नहीं तो उनका शरीर मोटा हो जायगा। यह कहावत कि "केश स्त्री-सौन्दर्य्य का मुकुट है" अब सच नहीं रही। अब तो स्त्री की महिमा उसके नक़्शे में ही है।

नक़्शे से मेरा मतलब है उसकी शारीरिक प्रतिमा से। यदि स्त्री का जीवन एक सुन्दर शरीर से आरम्भ हुआ है, जो स्वाभाविक है, तो उसका कर्तव्य है कि जब तक सम्भव हो, वह उसे सुरक्षित रक्खे। युवा और सुन्दर प्रतीत होने के लिए योरप की स्त्रियों ने न मालूम कितने कृत्रिम उपायों का सहारा लिया है। गालों पर ललाई बढ़ाने, चेहरे को मुलायम रखने तथा झुर्रियों को मिटाने के लिए योरप में न मालूम कितनी

दवाएँ प्रचलित हैं। पर वहाँ भी जब शरीर मोटा हो जाता है तो ये सारी दवाएँ बेकार हो जाती हैं; क्योंकि मोटी स्त्री को वहाँ ख़ूबसूरत समझा ही नहीं जाता।

संसार में ऐसे भी आदमी हैं जो मोटी ही स्त्रियों को पसन्द करते हैं। मैंने तो एक डाक्टर को यह कहते भी सुना है कि दुबली पतली औरतें माता के कार्य्यों को क़तई नहीं कर सकतीं। जो हो, नये लोगों में तो यही ख़्याल बढ़ रहा है कि युवा अवस्था पतले शरीर में जो आकर्षण भरती है वह मोटे शरीर में दिखाई तक नहीं पड़ता।

अँगरेज़ स्त्रियों का ख़याल है कि रबर की पेटी इस्तेमाल करने से शरीर पतला हो जाता है। हमारा इस पर विश्वास नहीं है। और हो भी तो हमारे यहाँ इसका रिवाज नहीं है। पर यह बात नहीं है कि पतले होने की और कोई दवा ही न हो। जो स्त्रियाँ पतली होना चाहें, उन्हें सबसे पहले अपने भोजन पर ध्यान देना चाहिए। हफ़्ते में एक दिन अन्न न खा, केवल आलू खाकर और दूध पीकर रहने से ही कितनी ही स्त्रियों के पतली होने की बात सुनी गई है। इस उपाय का एक बार मैंने भी अवलम्बन किया और इसमें सन्देह नहीं कि इससे मुझे बहुत लाभ भी हुआ। मुझे इस उपाय में पूरा विश्वास है।

पर इसमें ज़रा देर लगती है। जो बहुत ही जल्द पतली होना चाहें वे हफ़्ते में एक दिन केवल आलू, मिठाई या सेब आदि

फल खाकर रहें। मोटी से पतली होने की चिकित्सा बिजली से भी की जाती है। यह चिकित्सा जिस स्त्री को कराना होता है, वह महीन पोशाक पहनकर एक कुर्सी पर बैठती है, उसके विशेष मोटे अङ्गों पर किसी धातु की चद्दर के टुकड़े रख दिये जाते हैं। उनके ऊपर से बालू के थैले रक्खे जाते हैं। जब यन्त्र चलाया जाता है तो बिजली की धारा निकलकर पुट्ठों को क़रीब एक घंटे तक वैसे ही हिलाती है जैसे हवा किसी पेड़ की पत्तियों को। इससे दस मील पैदल चलने की मेहनत बैठे बैठे हो जाती है; पर किसी प्रकार की तकलीफ़ नहीं होती। हाँ, मेरा ख़याल है कि विशेष अनुभवी से ही यह चिकित्सा करानी चाहिए; क्योंकि विद्युद्धारा के धक्कों से हानि होने की सम्भावना सदा ही बनी रहती है।

यदि हम इस इलाज पर ग़ौर करें तो साफ़ पता चल जायगा कि काम न करने, आलस्य में बैठे रहने से ही मोटापन अधिक बढ़ जाता है। १८ वर्ष को आयु में जो स्त्रियाँ पतली छड़ी सी रहती हैं वे ही तीस वर्ष की होने पर पीपा हो जाती हैं! इसका कारण क्या है? यही कि उनका चलना फिरना आदि बन्द हो जाता है। ऐसी स्त्रियों से जब उनके पतियों का वैराग्य हो जाता है तो लोग कहते हैं—"स्त्री की उमर अधिक होगई। पतिजी किसी कमसिन की तलाश में हैं।" पर वास्तविक बात यह है कि पतिजी उमर का ख़याल न करके केवल शरीर के पतलेपन पर मुग्ध होते हैं।

पारसाल पौष की बात है। एक स्त्री बहुत मोटी थी, इसलिये

पति उसका कोई ख़याल न करके न मालूम कहाँ चला गया। उस निर्मोही के वियोग में दुःखी रहने और कभी उसकी मङ्गल-कामना के लिए व्रत करने से फाल्गुण तक में ही वह स्त्री काफी दुबली होगई। होली पर पति महाशय जब आये तो बड़े प्रसन्न हुए। अब वे दम्पति बड़े प्रेम से रहते हैं। पत्नी अपना पतलापन बनाये रखने के लिए प्रति रविवार को उपवास करती है। उसे वह सूर्य्य का व्रत कहती है।

मैं पहले मोटी थी। अगर आप मेरे मोटेपन की और अब आजकल के पतलेपन की तस्वीर देखें तो ज़मीन-आसमान का अन्तर पायेगें। इतनी पतली मैं केवल तीन महीने में हुई हूँ। पर इसका कारण सप्ताह में एक दिन का उपवास नहीं, निम्नलिखित कसरतें हैं। इन कसरतों के करने से कैसी ही मोटी स्त्री क्यों न हो, अवश्य पतली हो जायगी। ये कसरतें बड़ी आसान हैं और कहीं भी की जा सकती हैं।

इन कसरतों को आप गद्दा, दरी या मुलायम गलीचा बिछाकर उसी पर करें। आरम्भ करने से पहले एक गिलास पानी अवश्य पी लें।

(१) पीठ के बल सीधी लेट जाओ। धीरे धीरे ऐसा बैठो कि पैर अपनी जगह न छोड़ें और हाथ सिर के ऊपर सीधे उठे हों। फिर आगे झुको, यहाँ तक कि हाथ की अँगुलियाँ पैर के अँगूठों को छू लें, पर घुटने ज़मीन न छोड़ें। इसे रोज़ दस बार करो।

(२) पैर के दोनों घुटनों को ठुड्डी से मिलाओ और इस प्रकार दोनों दोहरी टाँगों को दोनों हाथों से कसकर बाँध लो। फिर पीठ के बल आगे-पीछे लोट लगाओ। इसे भी रोज़ दस बार करो।

(३) पेट के बल सीधी लेट जाओ। शरीर को पैर के अँगूठों और हाथों पर धीरे-धीरे उठाओ और गिराओ। दस बार इसे भी करो।

(४) पीठ के बल लेट जाओ। दोनों पैरों को ऊपर उठाओ और उन्हें सिर के पार ऐसा गिराओ कि अँगूठे ज़मीन छू लें। यह ज़रा कठिन है। पर यदि पैर ज़मीन न छू सकें तो जहाँ तक जायँ, ले जाओ। इसे भी उतनी ही बार करो।

(५) पीठ के बल लेट जाओ। पेट को जल्दी जल्दी फुलाओ और पचकाओ। इससे तुमने जो पानी पिया है वह पेट के अन्दर के अज़ों का मोटापन हरेगा।

इनके अलावा और भी सैकड़ों कसरतें हैं जिन्हें करके स्त्रियाँ पतली हो सकती हैं या अपना पतलापन बनाये रह सकती हैं। पर पर्दे की प्रथा के कारण भारतीय स्त्रियों के लिए इनके सिवा अन्य सारी उम्दा कसरतें बेकार हैं।

मेरी कमर कैसे पतली हो गई

[नीचे एक ऐसी महिला का बयान दिया जाता है जो स्थूल शरीर रखते हुए भी सौन्दर्य्य-साधक उपायों के द्वारा पतली कमर प्राप्त करके अपूर्व सुन्दरी बन गई ।]

अमीर घर की बेटी और अमीर तथा अँगरेज़ी ढँग से शिक्षित कुल में ब्याही जाने के कारण विवाह के दूसरे ही वर्ष बाद मुझे अपने पति के साथ बिलायत जाने का अवसर मिला। मेरी गिनती बड़ी सुन्दर स्त्रियों में थी और मेरे पति भी मुझे अपूर्व सुन्दरी समझते थे। परन्तु लन्दन में पहुँचते ही मेरी गिनती असभ्य स्त्रियों में होने लगी। इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि मैं पेटी नहीं बाँधती थी। जितनी भी अँगरेज़ी महिलाएँ मुझसे मिलीं सब ने मुझे अँगरेज़ी पोशाक पहनने और पेटी बाँधने की सलाह दी। "The thinner the waist the better the figure" अर्थात् "जितनी ही पतली कमर होगी उतना ही सुन्दर शरीर होगा।" यही उपदेश पग पग पर सुनाई देता। लन्दन में तो मैं पेटी न बाँध सकी; पर जब मेरे पतिदेव पेरिस (फ्रांस) के लिए रवाना हुए तो मुझे यह जान कर कि पेरिस में पतली कमर का व्यसन लन्दन से भी अधिक है, पेटी बाँधने के लिए लाचार होना

पड़ा। मैंने पेटी बाँधते हुए अपने पतिदेव से कहा—"जिस प्रकार हिन्दुस्तान की स्त्रियों को चहार-दीवारी के अन्दर बन्द रहना पड़ता है, चीन की स्त्रियों को लोहे का जूता पहनकर पाँव छोटा करना पड़ता है उसी प्रकार सभ्यता की दोहाई देनेवाले योरप की स्त्रियों को कमर में कसकर पेटी बाँधनी पड़ती है।"

पेरिस पहुँचकर मैंने देखा कि पाश्चात्य स्त्रियों में कृत्रिम सौन्दर्य्य की प्रधानता है। बनावटी और झूठे बाल, दाँत, आँख, नाक, पाउडर, कपड़े, उठी एड़ी के भड़कदार जूते, कसकर बँधी पेटी इत्यादि स्त्रियों को परम सुन्दरी बना देते हैं। इस प्रकार बनी-ठनी पचास-पचास वर्षों की वृद्धाएँ भी कितने ही युवकों को अपनी ओर आकर्षित किये रहती हैं। अमेरिका में तो इसीलिये एक क़ानून बन गया है कि यदि कोई पुरुष किसी स्त्री के झूठे सौन्दर्य्य पर आसक्त होकर उसके साथ विवाह कर ले, तो वह विवाह नाजायज़ क़रार दिया जाय।

वहाँ की पत्र-पत्रिकाओं से भी इस कृत्रिम सौन्दर्य्य को बड़ा प्रोत्साहन मिलता है। फ़ैशन के ऊपर ही सैकड़ों पत्र निकलते हैं। यह सब होते हुए भी मुझे यह अच्छा न लगा। पेटी बाँधने में तो मुझे बहुत ही कष्ट मालूम होता था। मैंने एक गर्भवती स्त्री देखी। उसने ख़ूब कसकर पेटी बाँधी थी। परिणाम यह हुआ कि उसके पेट का बच्चा दबकर मर गया। पेटी के कारण प्रायः ऐसी घटनाएँ हो जाया करतीं हैं। उस स्त्री की दुर्दशा देखकर मैंने पेटी उतार फेंकी। मैं फिर लन्दन चली आई। यहाँ मुझसे

श्रीमती मिसेज़ मूलर से भेंट हुई। ये पेटी नहीं पहनती थीं। इनके पति J. P. muller (जे० पी० मूलर) इसके बड़े खिलाफ़ थे। वे दुकानों पर पेटियाँ देखकर चिढ़ जाते थे। मूलर ने उन दिनों समाचार-पत्रों में यह लिखना आरम्भ कर दिया कि पेटी बाँधने से सम्पूर्ण शरीर में ख़ून का दौरा ठीक-ठीक न हो सकने के कारण स्वास्थ्य को बड़ी हानि पहुँचती है। मैंने मिसेज़ मूलर की सलाह के अनुसार प्राकृतिक रूप से कमर पतली करने का उद्योग करना आरम्भ किया।

मूलर का कहना था कि स्त्री-सौन्दर्य्य कमर के पतलेपन पर ही निर्भर नहीं है; क्योंकि यदि ऐसा होता तो प्रकृति स्वयं ही एक हड्डी की पेटी बना देती। फिर भी जब लोगों में ऐसी कुरुचि उत्पन्न हो गई है तो प्राकृतिक उपायों से ही कमर को पतली करना चाहिये। इसके लिए उन्होंने कितनी ही कसरतें ईजाद की हैं। मैंने मूलर के नियमों के अनुसार चलना आरम्भ किया और कुछ ही दिनों में मेरे शरीर में अपूर्व परिवर्तन हो गया।

मूलर ने जो कसरतें बताई हैं उनमें जिमनास्टिक (Gymnastic), हाथों पर सम्पूर्ण शरीर को तौलना, मुख्य है। गहरे पानी में नित्य तैरने से भी कमर पतली हो जाती है। प्रति दिन नियम से दौड़ने या बहुत दूर तक पैदल चलने से भी यही लाभ होता है। मैं जानती हूँ कि भारतवर्ष की परदे में रहनेवाली स्त्रियाँ उक्त उपायों को काम में कदाचित् ही ला सकती हैं। फिर भी बहुत दूर तक नित्य पैदल चलने की बात मानने में बहुतों को कोई ऐतराज़ न

होगा। मैं तो सुबह-शाम मिलाकर आठ मील तक चलती थी और अब भी चलती हूँ। इसके अलावा मूलर ने Deep Breathing exercise खूब खींचकर श्वांस लेने और छोड़ने की क्रिया पर भी बड़ा ज़ोर दिया है। इसे हम अपनी भाषा में प्राणायाम कह सकते हैं। प्राणायाम की क्रिया सभी को मालूम होगी। जिसे न मालूम हो वह किसी भी हिन्दू-शास्त्र जाननेवाले से पूछ सकती है। प्राणायाम से तोंद पचक जाती और सीने में कसाव आ जाता है। जहाँ ये दो-तीन बातें हो गईं वहाँ कमर का पतली हो जाना प्रत्यक्ष ही है। मुझे सब से अधिक सफलता प्राणायाम से ही मिली है।

कुछ पाश्चात्य विद्वान् Dancing नृत्य को भी कमर पतली करने के लिए उपयोगी बतलाते हैं। वेश्याओं ने इस कला को इतना दूषित कर दिया है कि हमारे देश में इसका उद्धार अभी बहुत दिनों तक नहीं हो सकता।

स्त्रियाँ क्या चाहती हैं ?

[स्त्रियाँ क्या चाहती हैं, इस सम्बन्ध में नीचे एक स्त्री के विचार उपस्थित किये जाते हैं।]

मुझे एक अँगरेजी पढ़ी-लिखी लड़की के साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वह बड़ी सुन्दर है, बड़ी तन्दुरुस्त है, बड़ी हँसमुख है, कई ढङ्ग से साड़ी पहनना जानती है और बाल सँवारने की तो उसे बीसों क़िस्में मालूम हैं। वह इसी साल बी० ए० पास हुई है और एम्० ए० में पढ़ रही है। उसके साथ रहकर थोड़े ही दिनों में मैंने जान लिया कि स्त्रियाँ चाहती कुछ हैं, पर उन्हें चाहना पड़ रहा है कुछ और।

एक रोज़ मैंने उस लड़की से पूछा—"बहिन एम्० ए० पास करके तुम क्या करोगी ?" उसने जवाब दिया—"क्या मालूम।" मैंने सोचा, शायद अभी इस कुमारी ने अपने जीवन का कुछ लक्ष्य निश्चित नहीं किया है। मैंने फिर पूछा—"तुम्हें क्या अच्छा लगता है ?"

प्रोफेसर बनोगी ?

नहीं।

डाक्टर ?

नहीं।

वकील ?

नहीं।

शादी करोगी ?

नहीं।

तो फिर जीवन में तुम कुछ करोगी ही नहीं ?

नहीं।

उसके इस निराशा-जनक उत्तर से मुझे बहुत दुःख हुआ।

मैं सोचने लगी—तो ईश्वर ने स्त्रियों को किसलिये बनाया है ? क्या उनके लिए इस जीवन में कोई निश्चित कार्य्य नहीं है ? इसका उत्तर मुझे अपने ही हृदय में मिल गया। मैंने सोचा—स्त्री आदिशक्ति है। आदिशक्ति न सही, मातृशक्ति तो है। यदि स्त्री अपनी मातृ-शक्ति खो बैठे तो क्या हो ? यह संसार उजाड़ हो जाय। दो चार स्त्रियों की बात जाने दीजिये, अधिकांश स्त्रियाँ ऐसी ही होती हैं जो केवल माता बनकर ही राष्ट्र को बलवान बना सकती हैं।

पर अब एक नया युग आ रहा है। इस युग में विवाह करने में मूर्खता समझी जायगी। माता बनना तो और भी मूर्खता की बात होगी। योरप और अमेरिका में यह युग आरम्भ हो गया

है। यह बड़ा उदार युग है। भारतवासियों का दुःख दूर करने के लिए यह युग यहाँ भी आजाय तो आश्चर्य्य नहीं।

जिस प्रकार धर्म का नाश करने के लिए रावण ने जन्म लिया था उसी प्रकार वर्तमान भारतीय समाज का नाश करने के लिए कुछ लोगों ने जन्म लिया है। ये लोग अपने को सामाजिक क्रान्तिकारी कहते हैं। इनकी समझ में समाज में इतनी बुराइयाँ आगई हैं कि उनके संसर्ग से जो अच्छाइयाँ थीं, वे भी बुराइयाँ हो गई हैं। इसलिये अब केवल बुराइयों को दूर करने की बात सोचना तब तक कठिन है, जब तक उनके साथ ही अच्छाइयों को भी दूर करने का निश्चय न कर लिया जाय। यही कारण है कि ये सामाजिक क्रान्तिकारी इस बाबा आदम के समय से चले आते हुए पुराने समाज को तहस-नहस करके एक बिल्कुल नया समाज बनाने की बात सोच रहे हैं। जो नया युग योरप और अमेरिका में उपस्थित हुआ है, ये क्रान्तिकारी उसी के दूत हैं। यह बात पाठकों को न भूलनी चाहिये।

कहते हैं, रावण ने जानकी को बहकाने के लिए माया का मृतक राम बना लिया था। आजकल के ये सामाजिक क्रान्तिकारी रावण भी अपनी माया से वर्तमान जानकी—स्त्री समाज—को धोखा देने के लिए नाना प्रकार की कूटनीतियों का प्रयोग कर रहे हैं। वे कहते हैं—स्त्रियों को स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये। पुरुषों ने उनको गुलाम बना रक्खा है। माता बनना मूर्खता है, आदि। मेरी समझ में नहीं आता कि स्त्रियों को क्या स्वतन्त्रता

नहीं है। मैं तो समझती हूँ कि ९० सैकड़ा पति अपनी पत्नियों की टेढ़ी भौं देखकर सहम जाते हैं। ये बेचारे स्त्रियों को क्या ग़ुलाम बनावेंगे! मैं इस बात को मानती हूँ कि स्त्रियों को समान अधिकार मिलना चाहिये। पर इसका यह मतलब नहीं है कि वे पुरुषों के समान अपनी रहन-सहन और कार्य्य-प्रणाली भी बना दें। पर मेरे क्रान्तिकारी भाई समान अधिकार का यही अर्थ लगा रहे हैं। इससे स्त्रियाँ भ्रम में पड़कर यह नहीं सोच सकतीं कि वास्तव में उनके जीवन का उद्देश्य क्या है।

क्या माता बनना मूर्खता है? इस पर ज़रा विचार करना चाहिये। पहले पहल यह बात फ़्रान्स में पैदा हुई थी। परिणाम यह हुआ कि फ़्रान्स की जन-संख्या घटने लगी और घटते घटते इतनी घट गई कि अब फ़्रान्स में इसके विरुद्ध आन्दोलन शुरू हो गया है। यदि फ़्रांस की सब स्त्रियाँ माता बनने से इन्कार कर देतीं तो वह देश कभी का नष्ट हो गया होता। मेरा मतलब यह है कि स्त्रियाँ सन्तान चाहती हैं। पर पुरुषों ने जब देखा कि बच्चे पैदा होने से स्त्रियों के यौवन का ह्रास होता है जिससे वे बहुत काल तक यौवन का सुख भोग नहीं कर सकते, तो उन्होंने बच्चे न पैदा होने देने की बात सोची। अब यही बात फ़ैशन हो गई। यहाँ तक कि आस्ट्रेलिया में भी, जहाँ अभी लाखों मनुष्यों की आवश्यकता है, कोई यह नहीं चाहता कि उसके अधिक बच्चे हों! क्यों भाई, वहाँ किस बात की कमी है? भारत के अधिकांश पढ़े-लिखे लोग भी कहने लगे हैं कि मैं एक-दो से

अधिक बालकों के लालन-पालन का प्रबन्ध नहीं कर सकता। ये वे लोग हैं जिनकी आमदनी ५००) महीने से भी ऊपर है। यह बहाना मात्र है। मेरी समझ में तो यदि सब प्रकार की सुविधाएँ हो जायँ तब भी ऐसे लोग सन्तान उत्पन्न करने से दूर ही रहने की बात सोचेंगे।

मैं यह मानती हूँ कि ढेर के ढेर बच्चे पैदा हो जाने से आर्थिक सङ्कट उपस्थित हो सकता है। पर यह सङ्कट सरल साध्य होता है। सब लड़के एक ही साथ तो पैदा हो नहीं जाते। ज्यों-ज्यों बच्चे बढ़ते जायँगे त्यों-त्यों वे इस योग्य होते जायँगे कि वे घर की आमदनी बढ़ा सकें। महात्मा गान्धी का भी कहना है कि हमारे देश में जितने आदमी हैं अभी उतने ही और रह सकते हैं। यहाँ मेरा यह भी मतलब नहीं है कि लोग दनादन बच्चे ही पैदा करने लगें। मेरा तात्पर्य सिर्फ़ यह है कि इस सम्बन्ध में अभी कुछ कहने-सुनने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि आप पढ़े-लिखे लोगों को बच्चे पैदा करने के लिए मना कर सकते हैं। पर जो ९९ सैकड़ा दरिद्र और गँवार लोग बच्चों के लिए जान दे रहे हैं, क़बरें पूजते फिरते हैं, उनको तो आप मना कर नहीं सकते। परिणाम यह होगा जो अच्छे और योग्य बच्चे उत्पन्न हो सकते थे, वे भी न होंगे।

मेरे सामाजिक क्रान्ति के इच्छुक भाइयो ! पढ़ी-लिखी स्त्री को उस मछली की तरह न बनाओ जो तैर नहीं सकती, उस आम के पेड़ की तरह न बनाओ, जिसमें कभी फल-फूल नहीं

लग सकते। उसे उस रास्ते पर चलने दो, जिस पर स्त्री को चलना चाहिये। जिस प्रकार पुरुषत्व आप का गुण है उसी प्रकार स्त्रीत्व स्त्री का गुण है। उसके इस अमूल्य गुण की दुर्दशा करना उचित नहीं है।

मुझे यह देखकर बड़ा दुःख होता है कि आजकल के नवयुवक स्त्री को अपनी सच्ची सङ्गिनी नहीं बनाते। स्त्री को घर के काम न करने देना—नौकर रखदेना, बच्चे की देख-भाल न करने देना—दाइयाँ रख देना, आदि व्यवस्थाओं से स्त्री को शारीरिक सुख मिल सकता है। पर क्या केवल इसी सुख के लिए स्त्री की सृष्टि हुई है? आपका यह भी कर्त्तव्य नहीं है कि आप केवल उसके चन्द्रमुख को चकोर की तरह ताका करें या इसीलिये उसके साथ विवाह करें। स्त्री पति की सङ्गिनी हैं, केवल बाग़ में साथ साथ घूमने के लिए नहीं, जीवन-संग्राम में साथ-साथ आगे बढ़ने के लिये। जब तक पुरुष इस बात को नहीं सोचेंगे तब तक वे स्त्रियों को चाहे जैसी स्वतंत्रता दें, वह सच्ची स्वतंत्रता नहीं हो सकती।

आजकल की जो सभ्यता है वह पुरुष-सभ्यता है—पुरुषों की बनाई हुई है, पुरुषों के हित की है। स्त्री-स्वभाव पुरुष-स्वभाव से भिन्न होने के कारण यह सभ्यता स्त्रियों के अनुकूल नहीं है। मेरा तो यहाँ तक विचार है कि यह सभ्यता स्त्रियों के लिये घातक है। इस सभ्यता की बाढ़ में स्त्रियों को बह चलना उचित नहीं है। उनका कर्त्तव्य है इस सभ्यता का विरोध करना, इसका नाश

करना, या कम से कम इसका इतना दमन करना कि इसके वे कीटाणु नष्ट हो जायँ जो स्त्री-गुणों के संहारक हैं।

स्त्रियों का कार्य्य क्षेत्र गृह ही होना चाहिये, कौंसिल या मिल नहीं। स्त्रियाँ चाहतीं हैं कि वे किसी को प्यार करें और किसी के द्वारा प्यार की जायँ। वे अपना घर चाहतीं हैं, अपना द्वार चाहतीं हैं, अपना आदमी चाहती हैं, अपना बच्चा चाहती हैं। जितनी बातें उनकी इस चाह की बाधक हैं वे उनके लिए घातक हैं। वे चाहे कहें न, पर उनका हृदय प्रेम और घर के लिए रोता रहता है। वर्तमान सभ्यता स्त्रियों के इस रोदन पर ध्यान नहीं दे सकती, क्योंकि वह पुरुषों की सभ्यता है। इसलिये स्त्रियों का कल्याण इसी में है कि वे इस सभ्यता का विरोध करें। इस सभ्यता के जो क्रान्तिकारी दूत हैं, उनसे सावधान हो जायँ। अपनी स्त्री-सभ्यता का प्रचार करें। यही उनका अधिकार है और मेरी समझ में यही वे चाहती हैं।

इँग्लैण्ड की अधिकांश स्त्रियाँ ब्याह क्यों नहीं करतीं ?

यह तो सभी जानते हैं कि इँग्लैंड क्या, तमाम योरप में ऐसी स्त्रियों की संख्या बहुत ही अधिक है जो कभी अपना विवाह नहीं करतीं। इसका कारण क्या है, इस लेख में यही बताने का प्रयत्न किया जायगा।

लंदन से स्त्रियों का एक अच्छा मासिकपत्र निकलता है। एक बार इस पत्र में इङ्गलैंड की समस्त अविवाहिता युवतियों से एक प्रश्न पूछा गया। प्रश्न यही था—"आप इस भरी जवानी में विवाह से विरक्त क्यों हैं।" सर्वश्रेष्ठ तथा अन्य अच्छे उत्तरों पर पुरस्कार देने का प्रलोभन भी दिया गया था। इस प्रश्न का उत्तर केवल उन्हीं स्त्रियों से माँगा गया था जिनकी आयु २५ वर्ष या उससे अधिक थी।

चारों तरफ़ से ढेर के ढेर अविवाहित युवतियों के उत्तर आने लगे और उस प्रसिद्ध पत्रिका के सम्पादकजी का दफ़्तर चिट्ठियों से भर गया। सम्पादकजी ने चिट्ठियों को पढ़ा और अपनी राय क़ायम की। तीन युवतियों को पाँच-पाँच पौंड इनाम दिया और उनकी चिट्ठी अपने अख़बार में छापी। दस को एक-एक

पौंड इनाम दिया। ५८ युवतियों का नाम छापा और शेष को धन्यवाद दिया। इसी फ़ैसले के आधार पर हम ये पंक्तियाँ लिख रहे हैं।

लंदन के उस प्रसिद्ध पत्रिका के सम्पादक ने जो राय क़ायम की, वह इस प्रकार है—"कुछ स्त्रियाँ ऐसी हैं जो विवाह तो करना चाहती हैं पर करें किससे ? उन्हें युवक नहीं मिलते। कुछ स्त्रियाँ ऐसी हैं जो अपने सफल और अनुकूल व्यवसाय के कारण अविवाहित अवस्था में ही अत्यन्त सन्न हैं और विवाह की इच्छा नहीं करतीं। कुछ ऐसी हैं जो पुरुष मात्र से घृणा करती हैं। कुछ ऐसी हैं जो केवल उस युवक के न मिलने के कारण, जिसे वे चाहती हैं, अविवाहिता हैं।"

अधिकांश चिट्ठियों में निम्न कारणों में से एक न एक अङ्कित थे—

(१) "मुझे कभी अवसर नहीं मिला।"

(२) "मुझे कभी योग्य युवक के दर्शन नहीं हुए। यह बात अवश्य है कि मुझसे ब्याह की प्रार्थना कितने ही युवकों ने की, पर मुझे वे नहीं जँचे।"

(३) "पुरुष विश्वास-घाती होते हैं। मैं ऐसे अनेक पुरुषों को जानती हूँ जिन्होंने मुझे थोड़े ही समय में प्यार भी किया और भुला भी दिया।"

नीचे ढेर की ढेर चिट्ठियों में से कुछ के विचार-पूर्ण अंश दिये जाते हैं—

"मुझे मालूम होता है कि मैं यदि उस मनुष्य से विवाह कर लेती जो मुझे पहले पहल मिला था तो मैं आदर्श गृहिणी होती।

पर यह सोचकर कि शायद उससे अच्छा युवक मिल जाय, मैं ऐसा न कर सकी। अब कुछ नहीं हो सकता।

"विवाहिता स्त्रियों को सब से बड़ा डर यही रहता है कि उनका पति किसी दूसरी स्त्री को प्यार न करने लगे। वह उसे जितना ही प्यार करती है इस प्रकार की धारणा उतनी ही प्रबल होती जाती है। दाम्पत्य प्रेम में हृदय एक होना चाहिये और किसी प्रकार का भय न होना चाहिये। पर क्या यह भय दूर किया जा सकता है?"

× × × ×

"माता-पिता लड़कियों को आज़ादी का ऐसा अवसर कहाँ देते हैं कि वे चाहे जिस रीति से हो, अपने जीवन का एक सङ्गी खोज लें। उन्हें यौवन के वे दिन भूल गये जब वे सुख के संसार में प्रविष्ट हुए थे। अब उन्हें यह ध्यान कहाँ रहा कि उनकी संतान भी उन्हीं तत्वों की बनी है जिनकी वे ख़ुद हैं।"

× × × ×

"विवाह जुआ है और जुआ नीति-विरुद्ध है।"

× × × ×

"सांसारिक जीवन में वास्तविक आनन्द नहीं है।"

× × × ×

"सुनती हूँ—संसार में ऐसे भी मनुष्य हैं जिनके लिये स्त्रियाँ अपना तन, मन, धन तथा जीवन सब का बलिदान कर सकती

हैं। मैं मानती हूँ कि ऐसे मनुष्य होंगे; पर मुझे तो एक भी नहीं मिला।

जिन तीन महिलाओं को पाँच-पाँच पौंड इनाम मिला था तथा जिनके उत्तर सर्वश्रेष्ठ समझे गये थे, उनकी भी थोड़ी-थोड़ी बानगी लीजिये।

[एक]

"एक युवती कन्या से विवाह करने न करने का प्रश्न पूछना वास्तव में बड़ी अच्छी बात है। अगर मैं संसार में अकेली ही स्त्री होती और मुझे अकेला ही पुरुष मिलता तो मैं अवश्य विवाह कर लेती। पर जहाँ स्त्री-पुरुषों की भरमार है, वहाँ यह बात कैसे मानी जा सकती है कि वे दोनों एक-दूसरे को छोड़कर किसी अन्य को प्यार न करेंगे। यह बात मैं अनेकों उदाहरणों से सिद्ध कर सकती हूँ; पर इसके लिये स्थान नहीं है। ख़ैर, यह तो हुई मनोरञ्जन की बात। मेरी समझ में अधिकांश स्त्रियाँ ब्याह कर लेतीं यदि उनके माँ-बाप उनके लिये एक प्रेमी ढूँढने में उनकी सहायता करते। जिस प्रकार युवतियाँ युवती-मंडल से अधिक परिचित रहती हैं उसी प्रकार युवक युवक-मंडल से अधिक परिचित रहते हैं। पर कितनी युवतियाँ ऐसी हैं जिनके भाई उन्हें सुन्दर-सुन्दर तथा योग्य युवकों से परिचित कराने की चेष्टा करते हैं ? मेरे ख़याल में तो एक भी नहीं। भाई बड़े स्वार्थी होते हैं। ख़ासकर मेरे भाई, जो अपनी मधुर मुस्कराहट से

अपनी सगी बहन का ज़रा भी मनोरञ्जन न कर, उसे दूसरे लोगों की बहनों के वास्ते रख छोड़ते हैं। आजकल के युग में पुरुष विवाह का भार उठा भी नहीं सकते। एक की कमाई दो का पेट नहीं भर सकती। विवाह होने पर पति योग्य निकला तो कुशल है। नहीं तो व्यर्थ में कुपति की अनुचित डाँट-फटकार का भय अलग ही है। यह सब लिखने का यह मतलब नहीं है कि मैं शुष्क हृदया हूँ। मेरा हृदय तो प्रेम के लिए छटपटा रहा है। पर खेद है कि किसी सच्चे प्रेमी से मेरी भेंट नहीं हुई। यही कारण है कि मैंने कभी विवाह नहीं किया।"

[दो]

"मुझसे किसी युवक ने ब्याह की प्रार्थना नहीं की। यह बात ठीक भी है और ग़लत भी। ग़लत इसलिये कि मुझसे जिन युवकों ने ब्याह की जो प्रार्थनाएँ कीं, वे उनके हृदय से नहीं निकली थीं। मैं दो उदाहरण दूँगी। एक महाशय ने मुझे प्यार करना शुरू किया। पर उनका प्यार मेरे मस्तिष्क के लिए था। मैं यह बात ताड़ गई और मैंने कह दिया—हमारे आपके मस्तिष्क में समानता होने का यह अर्थ नहीं है कि हमारा आपका ब्याह हो जाय। ब्याह के लिए तो हृदय की समानता चाहिये। इसके बाद एक दूसरे महाशय आये। बड़े हँसमुख थे, बात-बात में अपना हृदय बाहर उँडेल देते थे, पर उनमें गम्भीरता न थी। वे पढ़ते थे साधारण मन बहलानेवाले उपन्यास और मेरे पढ़ने का विषय विज्ञान था। बस, यह सम्बन्ध भी न हो सका। फिर

मैंने किसी युवक को ऐसा मौक़ा नहीं दिया। मैं प्रेम का आनन्द लूट चुकी हूँ, प्यार कर चुकी हूँ, पर उसके उल्लेख से यहाँ क्या प्रयोजन ? हाँ, यह हो सकता है कि कहीं वही न मेरे अविवाहिता रहने का कारण हो गया हो।"

[तीन]

"मेरी एक चचेरी बहन कहा करती है कि तुम विवाह न करके इस सुन्दर तन की बरबादी कर रही हो। मुझे उसके कहने में एक प्रकार के सत्य का आभास मिलता है। जब देखती हूँ कि कोई युवक अपनी पुनीता पत्नी को भीड़ भाड़ से बचाता हुआ बाज़ार से घर की ओर ले जाता है तो मेरा सम्पूर्ण शरीर बलशाली भुजाओं की रक्षा में क्रीड़ा करने के लिए तरङ्गित हो उठता है। मुझे यह भी कहने में संकोच नहीं है कि विवाह की चिन्ता जितनी मुझे है उतनी शायद संसार में किसी को नहीं है। फिर भी मैं विवाह नहीं कर सकती। कैसे करूँ ? वह मनुष्य कहाँ है जिसे मैं संसार के सब पुरुषों के बीच से निकालकर कहूँ कि यह मेरा पति है ? मैं बच्चों की माता कैसे बन सकती हूँ जब तक मुझे यह न मालूम हो जाय कि उनका पिता मेरा सच्चा अर्द्धाङ्ग है। यदि इच्छित युवक नहीं मिलता तो मैं विवाह कैसे करूँ, और न बिना उसके मिले कभी करूँगी। पर इससे यह न समझना चाहिये कि मेरा जीवन नीरस है। मेरे हाथ में

समाजसेवा है, स्त्री-बच्चों की सेवा है, धर्म की सेवा है और इन सब से मुझे उसी दर्जे का आनन्द मिलता है जितना वैवाहिक जीवन से मिलता।"

पाठक ऊपर की चिट्ठियों से समझ गये होंगे कि इँग्लैंड की स्त्रियाँ अपना विवाह करने न करने के सम्बन्ध में कितनी स्वतंत्र हैं। भारत की स्त्रियों को इस प्रकार की स्वतंत्रता मिलनी चाहिये या नहीं, इस प्रश्न पर विचार करना मैं उचित नहीं समझता। तो भी इतना अवश्य कहूँगा कि बाल्यावस्था में उन्हें जो आँख मूँदकर विवाह दिया जाता है वह उन्हें ज़बरदस्ती और जान बूझकर कुएँ में ढकेलने से कम नहीं है।

पुरुषों को मूँछ रखनी चाहिये या नहीं

[इस सम्बन्ध में नीचे एक अँगरेज़ महिला के
विचार उपस्थित किये जाते हैं ।]

जिस प्रकार विवाह के पूर्व प्रत्येक पुरुष चाहता है कि उसे सुन्दर पत्नी मिले उसी प्रकार स्त्री भी चाहती है कि उसे सुन्दर पति मिले। जिन देशों में स्त्रियाँ परतंत्र हैं वहाँ स्त्रियों की यह चाह पूरी नहीं होती। किन्तु अब वह ज़माना बहुत निकट है जब स्त्री की इस अभिलाषा के सामने समस्त संसार को सिर झुकाना पड़ेगा। हिन्दुस्तान में यह रीति है कि पुरुष चाहे जैसा हो, कुरूप से कुरूप क्यों न हो, बिना किसी प्रयास के सुन्दर से सुन्दर स्त्री का पति बन जाता है। किन्तु यह स्थिति अब बहुत दिनों तक नहीं रह सकती। जब तक स्त्रियाँ मूर्ख और अपढ़ हैं तभी तक चाहे जो हो जाय। महिला समाज के शिक्षित होते ही पुरुष को सुन्दर स्त्री का पति बनने के लिए यह परम आवश्यक होगा कि वह स्वयं भी सुन्दर हो।

भारत के लिए यह नयी बात न होगी। प्राचीन काल में जो स्वयंवर इत्यादि होते थे उनका भी यही अर्थ था। स्वयंवर में सम्मिलित होनेवाले राजाओं में प्रायः उसी को कामयाबी होती

थी जो सबसे रूपवान और गुणवान होता था। वही युग फिर आ रहा है। यह दूसरी बात है कि अब वह दूसरे रूप में हो।

योरप आदि पश्चिमी देशों में कोई पुरुष कुरूप नहीं रह सकता। क्योंकि कुरूप को वहाँ कोई स्त्री नहीं पसन्द करती। वहाँ तो पति बनने के लिए यह आवश्यक है कि पुरुष अपने रूप और गुण से स्त्री का हृदय जीत ले। इसी लिये वहाँ पुरुष भी नाना प्रकार के आकर्षक फ़ैशन बनाते हैं। वहाँ पति मूँछें तभी रख सकता है जब पत्नी उन्हें पसन्द करे। यदि पत्नी मूछें पसन्द नहीं करती तो पति एक मिनट भी मूछें रखने का साहस नहीं कर सकता। हमारे देश में भी अधिकांश अँगरेज़ी पढ़े-लिखे लोगों ने मूछें मुड़ानी आरम्भ करदी हैं। यह बात अभी अँगरेज़ों की नक़ल कहा जा सकता है; पर शीघ्र ही कहना पड़ेगा कि ऐसा अँगरेज़ी पढ़ी-लिखी औरतों को आकर्षित करने के लिए किया गया है।

'पुरुष मूछें रक्खें या न रक्खें' इस पर योरप की स्त्रियों ने बड़ा बाद-विबाद किया है। यह प्रश्न भविष्य में हमारे देश की स्त्रियों के सम्मुख भी आनेवाला है। इसीलिये इस प्रश्न पर यहाँ मैं एक अँगरेज़ महिला के कुछ विचार उपस्थित करता हूँ।

क्या मूछें रखने से पुरुष ख़ूबसूरत मालूम होता है? कैसे पुरुषों को मूछें रखनी चाहिये? क्या मूछें स्त्रियों को आकर्षित करती हैं? इन प्रश्नों पर योरप की चित्रकार स्त्रियों ने बड़ा विचार किया है और उनका विचार मानने योग्य भी है; क्योंकि पुरुष-सौन्दर्य्य का ज्ञान उनके लिए साधारण स्त्री की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक है।

बहुत से पुरुषों का जीवन केवल मूछें रखने या न रखने से दुखमय या सुखमय हो गया है। कुछ लोग, जिनका चेहरा सुन्दर नहीं है, कभी-कभी मूछों की बढ़िया काट-छाँट से सुन्दर लगने लगते हैं। स्त्रियाँ बढ़िया मूछें पसन्द करती हैं। कुछ मनुष्यों को इसीलिये तिरस्कृत होना पड़ा है कि उन्होंने अपनी सुन्दर मूँछों को मुड़ा दिया था।

कुछ दिन हुए, पेरिस में मूछों के कारण एक प्रेमी को बहुत परेशान होना पड़ा। कहानी इस प्रकार है।

पेरिस के एक नवयुवक वकील ने वहीं की एक युवती को प्यार करना आरम्भ किया। एक दिन दोनों इत्तिफ़ाक से रोम (इटली) में मिले। वहाँ युवक ने युवती से विवाह की प्रार्थना की। पर युवती साफ़ इन्कार करके पेरिस चली आयी। युवक अमेरिका चला गया और उस युवती को भूलने की चेष्टा करने लगा। अमेरिका की एक महिला ने उसे मूँछ मुड़ाकर उस युवती से पुनः मिलने की राय दी। प्रेमी लोग अपने प्रेम-पात्र को प्राप्त करने के लिए किसी भी सलाह पर अमल कर सकते हैं। उस युवक ने भी मूँछें मुड़ानी आरम्भ कीं और शीघ्र ही अपनी प्रेम-पात्री के पास पेरिस में अपना मूँछ-रहित चित्र भेजा। इस बार उस मानिनी युवती ने विवाह की स्वीकृति दे दी और कहा—"अब तुम बहुत सुन्दर लगते हो।"

चित्रकार स्त्रियाँ इस कहानी को नमक-मिर्च लगाकर कई प्रकार से कहती हैं। परन्तु इसकी सत्यता पर बहुत विश्वास नहीं

किया जा सकता। यदि किया भी जाय तो विचारों में केवल मूँछ के रहने या न रहने का इतना परिवर्त्तन हो जाना सत्य प्रेम का सूचक नहीं हो सकता। फिर भी यह अवश्य मानने योग्य है कि पुरुषसौन्दर्य्य को सब से अधिक बनाने या बिगाड़नेवाली मूँछें ही हैं।

लन्दन की एक प्रसिद्ध चित्रकार महिला का कथन है कि पढ़े-लिखे और दिमागी काम करनेवाले तथा अच्छी गठन के चेहरे के मनुष्य बिना मूँछों के बहुत भले मालूम होते हैं और कुरूप चेहरे के तथा मूर्ख मनुष्यों की शोभा मूँछों से अधिक बढ़ जाती है। दूसरी श्रेणी के मनुष्य संसार में बहुत हैं और जब वे भी पढ़े-लिखे मनुष्यों की देखा-देखी मूँछें मुड़ा लेते हैं तो मूँछ-रहित चेहरों की हँसी होना स्वाभाविक ही है।

जो मनुष्य बहुत दिनों से मूँछें .रखते आ रहे हैं, जब वे बे-मूँछ के हो जाते हैं तो बड़े भद्दे मालूम होते हैं। इसलिये जिसने आरम्भ से ही मूछें नहीं बनवाईं उसे आगे चलकर यह ग़लती नहीं करनी चाहिये।

चित्रकारों का मत है कि मूँछें चेहरे के सौंदर्य को छिपा लेती हैं। एक बार एक चित्रकार महिला ने अपने पति से कहा कि तुम्हारीं मूँछे बड़ा अत्याचार कर रही हैं। पति ने कारण पूछा तो उसने कहा—"मेरी आँखें तुम्हारे सुन्दर मुँह के दर्शन की प्यासी हैं। पर तुम्हारी मूछें इनकी प्यास बुझने नहीं देतीं। क्या इस प्रकार प्रेमिका को तरसाना अत्याचार नहीं है?"

एक दूसरी चित्रकार महिला का मत है कि मोटे मनुष्य को तो मूँछों से सदैव ही दूर रहना चाहिये। दुबले मनुष्य मूँछें रख सकते हैं; किन्तु तभी, जब चेहरा बहुत चुचका हो।

एक तीसरी महिला का मत है कि मूँछों की काट-छाँट में जितने परिश्रम और सावधानी की आवश्यकता है उतनी संतान-पालन में भी नहीं हैं। जङ्गली झाड़ी के समान जो अपनी मूँछों पर मूँछें उगने देते हैं वे स्त्री-प्रेम से वंचित रक्खे जाने के योग्य हैं। कटी-छँटी तथा काली और घनी मूँछें बड़ी भली मालूम होती हैं। भाले की नोक के समान निकली या चिड़ियों की चोंच के समान उठी या बैल की दुम के समान झूली मूँछे किसी काम की नहीं होतीं।

चित्रकारों का मत है कि कविता और उच्च कोटि की कला में मूँछों का कोई मान नहीं है। यूनान और रोम के जितने भी देवताओं और महान पुरुषों के चित्र मिलते हैं, किसी में मूँछें नहीं होतीं। प्राचीन चित्रकारी में मूँछों का स्थान ही नहीं है। हिन्दू देवताओं के चित्र भी बिना मूँछ के ही बनते हैं। किसी ने कभी राम, कृष्ण, शिव, बुद्ध इत्यादि के ओंठों पर मूँछों का अनुभव किया है? तात्पर्य्य यह कि जिसे सब से सुन्दर चेहरा कह सकते हैं वह बिना मूँछों का ही होता है। किन्तु इसके अनुसार सब पुरुषों को बिना सोचे-समझे मूँछें मुड़ा न देनी चाहिये; क्योंकि अधिकांश पुरुष ऐसे हैं, जिनकी मूँछों से ही शोभा है।

विवाह-योग्य लड़कियों से

विवाह योग्य लड़कियों से यहाँ मेरा मतलब उन दूध पीती अबोध बच्चियों से नहीं है जिन्हें माँ-बाप आँख मूँद कर मनमाना विवाह देते हैं, और न उन बड़ी लड़कियों से ही है जो लड़कपन का समय खेल-कूद में बिताकर युवा अवस्था में प्रवेश कर रही हैं। यहाँ मैं सिर्फ़ उन लड़कियों से दो शब्द कहना चाहता हूँ जिन्हें अपनी यथार्थ स्थिति का ज्ञान हो गया है और जो आवश्यकता पड़ने पर संसार-सागर में अपनी जीवन-नौका स्वतंत्र रूप से चला सकती हैं।

बहनो! अब तुम जीवन के उस दरवाजे पर आ गई हो जहाँ से तुम समस्त संसार को देख और समझ सकती हो। यही नहीं, तुम यह भी अनुभव कर सकती हो कि जीवन के शेष वर्षों की सीढ़ियों पर चढ़कर तुम कितनी ऊँचाई से झाँक सकोगी। जिस प्रकार जगन्नियन्ता परमात्मा की अदृश्य आज्ञा मानकर तुम्हारे खिड़की के बाहर लगे पेड़ की पत्ती गिरती है उसी प्रकार तुम भी अपने जीवन के प्रभात से दोपहर, तीसरे पहर और सन्ध्या के उपवन में विचरणकर एक शान्तिमय रात में विश्राम करोगी। यह ईश्वरीय नियम है, इसे कोई तोड़ नहीं सकता।

तुम्हारा जीवन इस अनन्त विश्व का एक भाग है और उसी के नियमों पर तुमको चलना पड़ेगा। पर इससे यह न समझ लेना कि तुम कुछ कर ही नहीं सकती हो। तुम जो चाहो उसे करने के लिये स्वतंत्र हो। जीवन का सदुपयोग और दुरुपयोग दोनों ही तुम्हारे हाथ में है। यह संसार एक नाट्यशाला है; पर तुम इस नाटक को देखने के लिए नहीं आई हो, इसमें तुमको भी भाग लेना पड़ेगा। जिस प्रकार एक साधारण नाट्यशाला की सफलता उसके सब व्यक्तियों पर निर्भर है उसी प्रकार इस विश्व की नाट्य शाला की सफलता भी अपने समस्त नटों की आश्रित है। इसी से तुम समझ सकती हो कि तुम्हारे कार्यों में ज़रा सी भी त्रुटि का होना केवल तुम्हारे लिये ही नहीं, समस्त संसार के लिए अहितकर होगा।

इस विश्व के नाट्य-भवन में तुम किस वेष में पधारोगी? तुम इनाम में क्या लेना चाहोगी? कीर्ति या धन? या केवल सन्तोष? जैसे इस देश की अन्य स्त्रियाँ घूँघट काढ़कर घर में बैठती हैं क्या तुम भी उसी प्रकार बैठोगी, या घर से बाहर भी तुम अपने बैठने के लिए कोई स्थान नियत करोगी? तुम्हें हल करने के लिए यह अत्यन्त प्रयोजनीय समस्या है और मैं जानती हूँ कि इसमें तुम्हें सलाह देना और भी कठिन है।

तुम्हें जो मैं सबसे सरल और आसान सलाह दे सकती हूँ वह यह है कि तुम्हें जो वस्तुएँ प्रकृति ने प्रदान की हैं उनका व्यवहार भी प्राकृतिक ही होना चाहिये और तुम्हें सदैव ध्यान

रखना चाहिये कि इस व्यवहार में तुम किसी प्रकार की भूल नहीं कर रही हो। तुम अपने को किसी कार्य्य के योग्य बनाने में यह भूल न कर बैठो कि उस कार्य्य से औरों को लाभ न पहुँचे। तुम जिस रास्ते से चलो वह तुम्हारे ध्येय के साथ ही साथ तुम्हें कीर्ति, सम्मान और उच्च पद तक पहुँचानेवाला हो। तुम्हारा सबसे बड़ा अपराध यह होगा कि तुम जान बूझकर उस महत्कार्य्य से जी चुराओ जिसे करने के लिए परमात्मा बेटियों, बहुओं और माताओं की सृष्टि करता है। जो तुम्हारे जन्मप्राप्त अधिकारों को बेचकर तुम्हें मन बहलावे के लिए बदले में छोटी-मोटी चीजें ख़रीद देना चाहते हैं उनको तुम्हारी दृष्टि में वही स्थान मिलना चाहिये जो घृणा के अन्य पात्रों को मिलता है।

यह तुम्हारे जीवन का वह समय है जो प्रत्येक मनुष्य को तुम्हारा इच्छुक बना सकता है। इस समय जो सबसे बढ़कर दुःख की बात हो सकती है वह यह है कि कभी-कभी बड़े महात्मा पुरुष भी स्त्रीत्व की इज्ज़त करना भूल जाते हैं। जो लोग अपने को ऋषियों की सन्तान होने का अभिमान करते हैं वही यह भूल जाते हैं कि हमारी भावी सन्तान किस पूर्वज का अभिमान करेगी।

तुम अपने जीवन का चाहे जो मार्ग निश्चित करो, तुमको उस स्वत्त्व की सदैव रक्षा करनी चाहिये जो तुम्हें माता से मिला है। तुम्हारे हृदय में यह विचार दृढ़ हो जाना चाहिये कि ईश्वर के प्रेम के पश्चात् माता का ही प्रेम ऐसा है जो मनुष्य के हृदय

को उभार सकता है। मनुष्य-समाज में माता का जो स्थान है, माता होने पर वही तुमको भी मिलेगा। उस स्थान की पवित्रता का ध्यान तुमको अभी से रखना चाहिये। ज़रा भी असावधानी तुम्हें स्त्रीत्व की रक्षा के अयोग्य साबित कर देगी।

तुम्हें उन सुखों को भी त्याग देने के लिए तैयार रहना चाहिये जो समाज से प्राप्त होते हुए भी तुम्हारे कीर्ति के पथ में अड़चन डालते हैं। प्राचीन काल में जब योद्धा लोग रण-यात्रा के लिए तैयार होते थे तो उनकी स्त्रियाँ ही उनकी कमर में अपने हाथों से तलवार लटका देती थीं। इसका सुन्दर अर्थ आजकल के ज़माने में भी चरितार्थ किया जा सकता है। इसी सुन्दर तरीक़े से प्राचीन काल की महिला अपने पति को द्विगुणित साहस और शक्ति से युद्ध-क्षेत्र की ओर भेजती थीं। प्रत्येक स्त्री अपने पति के हृदय में इस प्रकार की शक्ति का संचार कर सकती हैं। जिस स्त्री ने अपने पति के हृदय पर अपनी छाप लगा दी है उसके लिये तो यह बाएँ हाथ का खेल है। ऐसे वीरों की कृतियों में जो बातें सर्व साधारण नहीं देख सकते वे उनकी स्त्रियों की हैं। स्त्री के द्वारा उत्साहित किया हुआ हृदय जो कार्य करता है उसमें बहुत कम असफलता होती है। बहुधा देखा गया है कि अधिकांश महापुरुषों के शक्तिमान और विजयी होने का कारण केवल प्रेम था और वह भी स्त्री का प्रेम। जो पुरुष सांसारिक कठिनाइयों और आपत्तियों का सामना करता है वह कदापि हताश नहीं होता, यदि उसके बग़ल में स्त्री का कोमल हृदय उसे सान्त्वना देने या उत्साहित करने के लिए धकधका

रहा है। भविष्य की बधू-बेटियो! तुम्हें यह बात अपने अञ्चल में लिख लेनी चाहिये कि प्रत्येक स्त्री में अपने प्रेमी पति को सूर्य के समान चमका देने की शक्ति है और तुम इस शक्ति का दुरुपयोग न करोगी।

अधिकांश लोगों की यह धारणा है कि शिक्षा स्त्रियों को उनके यथार्थ स्थान से हटा देती है। इसका यही कारण है कि वे स्त्रियों का यथार्थ स्थान समझते ही नहीं। तुम्हें लोगों की इस ग़लत धारणा को निर्मूल करने के प्रयत्न में यह देखना होगा कि तुम्हारे कार्य तुम्हारे विचारों के विरोधी तो नहीं होते। "तुम्हारे लिए घर के सिवा संसार में तुम्हें और कोई स्थान नहीं है" यह अत्यन्त संकुचित विचार वालों की राय है। यदि तुम्हें घर के बाहर भी कार्य करने का मौक़ा मिल रहा हो तो उसे कदापि हाथ से न जाने दो और न स्वप्न में भी उक्त भावना को हृदय में स्थान दो।

कार्य्य-क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए तुम्हें जो साधन प्राप्त हैं या हो सकते हैं, वे तुम्हारे अधिकार के बाहर कदापि नहीं हैं। यदि तुम्हारा काम पुरुषों के बीच में है तो तुम्हें पीछे न हटना चाहिये। जब तक तुम्हारा काम तुम्हारे स्त्रीत्व पर आक्रमण नहीं करता तब तक वह तुम्हारा ही काम है, फिर वह घर के भीतर या बाहर, चाहे जहाँ हो। बहुधा पुरुषों के बीच में काम करनेवाली स्त्रियाँ देखने की वस्तु बन जाती हैं। इससे भयभीत न होना चाहिये। अपनी सच्चरित्रता और व्यवहार-कुशलता से ऐसी स्त्रियाँ शीघ्र ही देखने की वस्तु के बजाय सम्मान की मूर्ति बन जाती हैं। जो कार्य्य हाथ में ले लिया जाय उसके करने में

संकोच या लज्जा को दूर कर देना चाहिये। विचार कर देखा जाय तो हाथ में आये काम को त्याग देना ही लज्जा का विषय है।

लोग कहते हैं कि स्त्रियों में आभूषणों का प्यार स्वाभाविक होता है। मैं तुम्हें स्वभाव के विरुद्ध कार्रवाई करने की राय न दूँगा। परन्तु इतना अवश्य कहूँगा कि यदि ऊपर की सब बातें तुम्हारी समझ में आ जायँगी तो तुम स्वयं ही गहने पसन्द न करोगी। आजकल बहुत आभूषण पहनना भी मूर्खता में दाख़िल है। हाँ, यदि तुम्हारा हृदय न माने, आभूषणों के लिए ललचे ही, तो तुम अपने पति की आर्थिक स्थिति का ध्यान अवश्य रखना। जो स्त्रियाँ अपने पतियों को आभूषण बनवाने के लिए लाचार करती हैं वे यथार्थ में उस पद का दुरुपयोग करती हैं जो उन्होंने अपने पति के हृदय में प्राप्त कर लिया है।

जीवन की समस्याएँ बड़ी ही जटिल हैं। कभी-कभी तो मनुष्य स्वयं ही यह नहीं समझ पाता कि वह किस मार्ग पर चल रहा है। हाँ, एक बात रही जाती है। विवाह के बाद ही तुम्हें पातिव्रत धर्म चारों तरफ़ से घेर लेगा। इस धर्म को ठीक-ठीक न समझ सकने के कारण स्त्रियों को कभी-कभी बड़ा कष्ट भोगना पड़ता है। इस विषय में इतना ही लिख देना काफ़ी होगा कि स्त्री पति के मनोरञ्जन की सामग्री नहीं, उसकी जीवन-यात्रा की सच्ची सङ्गिनी है। यदि पति तुम्हें केवल मनोरञ्जन की सामग्री ही बनाना चाहे तो उसका विरोध करना अनुचित नहीं है। ऐसे पति के अप्रसन्न हो जाने से। पाति-व्रत धर्म में किसी प्रकार का विरोध भी स्त्रीत्व की रक्षा का एक अङ्ग है

हमारी बहुएँ बहुत शर्मीली क्यों जान पड़ती हैं ?

एक महिला के विचार

जब मैं अपने लड़कपन के दिनों का स्मरण करती हूँ और आजकल के ज़माने से उनकी तुलना करती हूँ तो मेरा कलेजा काँप उठता है। तब के और अब के जीवन में मुझे ज़मीन-आसमान का अन्तर दिखाई देता है। कहाँ वह स्वतंत्र बिहार और कहाँ यह परतंत्र पींजड़ा। तब मैं दौड़ती थी, अब रेंगने में भी हिचकिचाहट मालूम होती है। तब आँखें कुत्तों के साथ दौड़ती थीं और तितिलियों के साथ उड़ती थीं, अब वे चहार-दीवारी के अन्दर भी दिलखोलकर चक्कर नहीं लगाने पातीं। तब मैं किसी प्रकार की भी आहट पाते ही चंचल हो उठती थी और उसका पता लगाने के लिए उत्सुकता के साथ उसी ओर दौड़ पड़ती थी, परन्तु अब कौवे की काँव-काँव पर भी छुई-मुई की भाँति सिकुड़ जाती हूँ। जानने की उत्सुकता तो बढ़ती है; पर न पाँव उठते हैं और न आँखें घूँघट हटाने का आग्रह करती हैं। तब सड़क पर बजते हुए बाजों की आवाज़ मुझे घर से बाहर खड़ी कर देने के लिए फुस-लाती थी, अब वह मेरी हँसी उड़ाती हुई एक ओर से उठती है और

दूसरी ओर विलीन हो जाती है। इन सब बातों का कारण क्या है? मुझमें एकाएक घोर परिवर्तन क्यों हो गया? मेरे ऊपर इस घोर लज्जा का ज्वालामुखी कहाँ से और क्यों उबल पड़ा? इत्यादि प्रश्न हृदय में उठते हैं और विलीन हो जाते हैं। पर कुछ समझ में नहीं आता। लोग कहते हैं, तब मैं पिता के घर थी, अब पति के घर में हूँ, पर इसे तो इस परिवर्तन का कारण न होना चाहिये था। पिता के घर से पति के घर में आना तो स्त्री के लिए परम सौभाग्य की बात है। पति का घर जेलख़ाना तो नहीं है और न उसे जेलख़ाना समझकर कोई पिता अपनी निरपराध बच्ची को भेजता ही है। फिर यह परतंत्रता कैसी? पिता और पति में इतना ही फ़रक है कि 'प' से 'इ' की मात्रा निकलकर 'ता' में लग गई है और आकार का लोप होगया है। इतने ही फ़रक ने यह आँधी खड़ी करदी और जन्म भर की स्वतंत्रता पर पानी फेर दिया। बलिहारी है इस पिता से प्राप्त पति की।

मुझे यह ध्यान था कि बेटी से बहू बनते ही किसी कवि का यह कथन है कि—

सवैया

तब आँख रहे अब नैन भये,
कजरा जो दिये मृग-छौनन के।
तब बारी रहो, अब नारी भई,
चित चाहत सेज बिछौनन के॥

गुड़ियाँ अब खेलब छोड़ो लली,
नकवाइ गये दिन गौनन के।
अब खेलोगी एक पिया सँग में,
दिन बीतिगे खेल खिलौनन के ।।

शरीर धरकर आँखों के सामने नृत्य करने लगेगा; न कि प्यारे पति का दर्शन करते ही सारी स्वतंत्रता ग्रीष्म-सरिता के समान क्षीण हो जायगी। अस्तु।

पति के घर पहुँचते ही औरतें इतने शर्मीले स्वभाव की क्यों हो जाती हैं? इसका कारण जहाँ तक मैं समझती हूँ समाज में परम्परा से चली आयी मूर्खता और स्त्रियों पर अनुचित अत्याचार के सिवा और कुछ नहीं है। यह नहीं कहा जा सकता कि वहाँ उसे अकस्मात् अपरिचित मनुष्यों के बीच में आना पड़ता है। क्योंकि यदि ऐसा होता तो पुरुष भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते ही उसी प्रकार की लज्जा और अड़चनों का अनुभव करते। औरतों में पुरुषों की अपेक्षा लज्जा की मात्रा कुछ अधिक है। इस बात को मैं अस्वीकार नहीं करती, किन्तु इसकी भी कोई हद होती है। चहार-दीवारी के अन्दर भी शर्म के मारे सिकुड़ते रहने में वास्तविक लज्जा का अनुभव नहीं हो सकता। यहाँ मेरा मतलब पर्दे की भयानक प्रथा से नहीं है। मैं यह कहना चाहती हूँ कि उस चहारदीवारी के अन्दर भी, जहाँ बाहर से किसी प्रकार के आक्रमण का भय नहीं है, मुँह छिपाकर क्यों रहा जाय? चाहे एक भी पुरुष न हो, नवागन्तुक बधू एकान्त कमरे में भी मुँह खोल

कर बैठने का साहस नहीं कर सकती। यह बात नहीं है कि वह मुँह खोलकर बैठना ही नहीं चाहती; क्योंकि यदि ऐसा होता तो वह अपने पिता के घर में भी इसी प्रकार रहती। गाँवों में यह अक्सर देखने में आता है कि वे लड़कियाँ, जो पति के घर मुख पर से कभी घूँघट नहीं हटातीं, पिता के घर जाते ही नंगे सिर इधर उधर फिरने लगती हैं। ऐसी स्थिति में बहू बनने के बाद की लज्जा को बनावटी लज्जा कहा जाय तो अनुचित न होगा।

इस बनावटी लज्जा के कई कारण हैं। नवागन्तुक बधू को मूँद ढाँककर रखने का लोगों को व्यसन सा हो गया है। सासें इसी में प्रसन्न रहती हैं कि उनकी बहुओं की कोई पैर की उँगुली भी न देख सके। बालिका-बधू ने इधर-उधर आँख चलाई या हाथ-पैर साड़ी से बाहर निकाले अथवा घूँघट का घेरा ज़रा कम किया कि सास ने निर्लज्ज, बेहूदी, चुड़ैल इत्यादि शुभ शब्दों से सम्बोधन करना आरम्भ कर दिया! ऐसी स्थिति में बेचारी असहाय बालिका लज्जा का आदर्श न खड़ा करे तो करे क्या? इस कटु व्यवहार का परिणाम घर की छोटी-छोटी बालिकाओं पर भी बुरा ही पड़ता है। उनके हृदय में यह बात घर करने लगती है कि ससुराल में सदैव घूँघट काढ़े रहना आदर्श बहू के गुणों का एक अङ्ग है। बस ससुराल में पहुँचते ही वह इस सर्वमान्य गुण को भली भाँति झलकाने की चेष्टा करने लगती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक हिन्दू कुटुम्ब के पुरुषों में भी एक बड़ा दोष विद्यमान रहता है। वे इस बात को हृदय से चाहते रहते हैं कि उनकी बधुएँ

उनसे पूरा पूरा पर्दा करें। यदि कभी इत्तिफ़ाक से वे घर में पहुँचे और बधू मुँह खोले खड़ी मिली तो इस प्रकार खाँसना शुरू करते हैं मानो कोई चीज़ गले में अटक गई हो! फिर जब तक बेचारी बधू मुँह मूँदकर तथा पूर्ण रूप से सिकुड़-मुकुड़कर गठरी न हो जाय, वे खाँसना या पैर पीटना बन्द नहीं कर सकते! धन्य है ऐसे महापुरुषों को। इन बातों के अतिरिक्त मूर्खता भी, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, मुख्य है। जो स्त्री जितनी ही मूर्ख और अपढ़ है वह उतना ही पर्देनशीन बनने की चेष्टा भी करती है। फिर अकेले स्त्री ही की मूर्खता नहीं है, सारे कुटुम्ब के कुटुम्ब इस दारुण दलदल में फँसे हुए हैं। अच्छा लगे या बुरा, हितकर जान पड़े या हानिकर, सब आँख मूँदकर उसी पुरानी चाल पर चले जा रहे हैं। जिन कुटुम्बों में शिक्षा की ज़रा भी रोशनी पड़ी है वहाँ इस प्रकार की लज्जा का कोल्हू पेरना भी बन्द हो गया है। पढ़ी-लिखी स्त्रियों ने इस दानवी लज्जा को दूर करने का यत्न किया है, पर जिस समाज के साथ उन्हें क़दम बढ़ाना पड़ता है वह इतना हठी और मन्दगामी है कि न वह स्वयं ऊँचे उठता है और न उनको उठने देता है। फिर भी शिक्षित कुटुम्बों ने बहुत कुछ उन्नति कर दिखाई है और उन्हीं को देखकर यह आशा की जा रही है कि यदि इसी प्रकार समाज में शिक्षा का प्रसार होता गया तो एक न एक दिन स्त्रियाँ भी वाह्य प्रकृति के साथ अपना नवीन नाता जोड़ लेंगी।

जिस देश में इस प्रकार पर्दे के अन्दर भी पर्दा है और कृत्रिम

लज्जा ने भी लज्जा का यथार्थ रूप धारण कर लिया है, वहाँ के स्त्री समाज की उन्नति की चर्चा चलाना भी दोष में दाखिल है। ऐसी स्थिति में सुधार की आशा करना व्यर्थ ही नहीं, असम्भव है।

हाय ! हमारा स्त्री-समाज कितना अधोगति को प्राप्त है। मुँह खोलने का अधिकार नहीं, ज़बान डुलाने की आज्ञा नहीं, घर से बाहर पैर धरने की अनुमति नहीं, खुली हवा में साँस लेने का साहस नहीं, इत्यादि। कहाँ तक गिनाऊँ ! हे ईश्वर ! इस पाहन-हृदय समाज के कठोर नियमों से असहाय अबलाओं की रक्षा करो। भगवान् ! रोते रोते बहुत दिन होगये, अत्याचार की भी सीमा होती है। अब वेदना असह्य हो रही है। बचाओ !

क्या स्त्रियाँ पुरुषों के मनोरंजन की सामग्री हैं ?

आजकल मैं जो भी उच्चकोटि का मासिकपत्र या पत्रिका देखता हूँ, उसी में एक न एक ऐसा स्त्री-चित्र अवश्य पाता हूँ, जिसका उद्देश्य पढ़नेवालों का चित्त आकर्षित करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं प्रतीत होता। अँगरेजी पत्रों में तो ऐसे चित्रों की बाढ़ सी आ गई है। बहुत कम अँगरेजी मासिकपत्र ऐसे मिलेंगे जो आदि से अन्त तक स्त्री-चित्रों से परिपूर्ण न हों। ऐसे पत्र बहुत कम हैं जो किसी ख़ास उद्देश्य से निकाले जाते हैं और निरन्तर उसी मार्ग पर चलते रहते हैं। अधिकांश पत्र ऐसे हैं, जिन पर अपने उद्देश्य के साथ ही अपने संचालकों के उदर-पोषण का भी भार है। इसके अतिरिक्त ऐसे भी बहुत से पत्र हैं जिनकी नीति ही द्रव्योपार्जन करना है। ऐसी अवस्था में कुछ इने-गिने पत्रों को छोड़कर, जिनको आर्थिक संकट का किञ्चित भय नहीं है, कदाचित् ही कोई पत्र ऐसा हो जो सर्वसाधारण का रुख़ लिये बिना चले। जनता के विचार, भाव और इच्छाओं को सामने रखकर तथा उनके अनुकूल चलने में ही उनकी भलाई है। जैसी पढ़नेवालों की रुचि होगी वैसे ही पत्र भी प्रकाशित होंगे। अतएव सामयिक मासिक-पत्रों में स्त्री-चित्रों को भिन्न-भिन्न

स्थितियों में प्रकाशित होते देख यह अनुमान करना कि इनसे पढ़ने वालों का काफ़ी मनोरञ्जन होता है, अनुचित नहीं है। लोग जो अपने को बहुत विद्वान् समझते हैं तथा जिनको और लोग भी ऐसा ही अनुमान करते हैं, इस प्रकार की धूम-धाम को कला का विकास और उसकी उन्नति का कारण कहते हैं। उनका ऐसा कहना किसी हद तक ठीक हो सकता है। पर इसे कला की वास्तविक उन्नति नहीं कह सकते। क्योंकि यदि ऐसा होता तो जहाँ स्त्री-चित्रों की प्रधानता है, वहीं बन, पहाड़, नदी, समुद्र, आकाश, बादल, वृक्ष, लता इत्यादि प्रकृति-सम्बन्धी चित्रों की भी भरमार होती, नहीं तो कम से कम स्त्री-सौन्दर्य के साथ ही साथ पुरुष-शरीर के सौन्दर्य की ओर भी उचित ध्यान दिया जाता।

हमारे यहाँ का स्त्री-समाज परतंत्र कहा जाता है और मेरी समझ में है भी। इसका कारण परदे की प्रथा, अज्ञानता, स्त्री-शिक्षा की कमी, बाहर के शत्रुओं का भय, इत्यादि उतना नहीं है, जितना लोगों की यह भावना है कि स्त्रियाँ भी हमारे मनोरञ्जन की वस्तुओं में से एक हैं। जिस प्रकार मनुष्य भोजन, वस्त्र, घर, इत्यादि वस्तुएँ अपने आराम के लिए आवश्यक समझता है, इसी प्रकार वह स्त्री को भी एक आराम की वस्तु समझता है। एक अच्छे घर के लिए पलँग, कुर्सी, तिपाई, मेज़, सुन्दर चित्र, रंग-बिरंगे परदे, फूलों के गमले, नौकर-चाकर, इत्यादि चीज़ों की जिस प्रकार आवश्यकता समझी जाती है उसी प्रकार स्त्री की भी। अन्तर केवल इतना ही है कि और सब जड़ पदार्थ हैं, पर स्त्री

एक चलती-फिरती जीवित वस्तु है। यह हो सकता है इन सब वस्तुओं में स्त्री को प्रधानता दी जाय अथवा वह इन वस्तुओं से अधिक उपयोगी और मूल्यवान् समझी जाय; पर वह समान अधिकारिणी प्राचीन काल में भले ही समझी जाती रही हो, अब नहीं कही जा सकती। जितना खेद मनुष्य को कोई मूल्यवान् वस्तु खो जाने से, घर लुट जाने या सर्व-सम्पत्ति के नाश हो जाने से होता है, स्त्री के मर जाने पर भी उतना ही या कभी-कभी उससे भी कम खेद लोगों को होता है। जैसे एक वस्तु के खो जाने पर दूसरी वस्तु ख़रीद ली जाती है, या एक नौकर के भाग जाने पर दूसरा नौकर रख लिया जाता है, या एक पालतू जानवर (कुत्ता इत्यादि) के मर जाने अथवा बिगड़ जाने पर दूसरा पाल लिया जाता है; ठीक उसी प्रकार एक स्त्री के के मर जाने पर लोग तत्क्षण दूसरा विवाह कर लेते हैं। अधिकांश बुडढे केवल इसीलिये विवाह करते हैं कि उनकी शेष आयु हँसते हँसते व्यतीत हो जाय।

बहु-विवाह की प्रथा भी इसी प्रकार के मनोरञ्जन का एक नमूना है। जो मनुष्य जितना ही धनी है जितना ही अधिक धन का व्यय कर सकता है, वह उतना ही अधिक विवाह भी करता देखा गया है। हमारे देशी राज्यों के राजा लोग अब भी कई-कई विवाह करते हैं। मुसलमानों के शासन-काल में बहुविवाह की प्रथा इतनी बढ़ गई थी कि एक साधारण से साधारण राज्याधिकारी भी कई दर्जन स्त्रियाँ रखता था। कहते हैं, बग़दाद के

ख़लीफ़ा के ३६० बेगमें थीं। हिन्दुस्तान में ही ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी के शासन-काल में कुछ ऐसे छोटे-मोटे नवाब थे, जिनकी पत्नियों की गिनती करना भी सहज नहीं था। पाठक क्षमा करें, यदि मैं कहूँ कि इन नव्वाबों के समय में स्त्रीजाति पर बहुत ही अत्याचार किया जाता था। उदाहरण के लिए—नव्वाब लोग अधिकतर पर्दे ही में रहते थे। चारों तरफ़ स्त्रियाँ ही स्त्रियाँ दिखाई पड़ती थीं। कहा जाता है, एक नव्वाब साहब इतने बढ़े चढ़े थे कि जब वे कभी छत पर चढ़ते थे तो सीढ़ी के दोनों ओर नौजवान स्त्रियों की दो कतारें खड़ी हो जाती थीं और वे उनको पकड़-पकड़कर और उनको चूमते हुए छत पर जाते थे। यही नहीं, यहाँ तक भी सुनने में आता है कि कुछ नव्वाब अपनी ग़रीब प्रजा की लड़कियों को ज़बरदस्ती पकड़वा मँगाते थे। उनके गालों को सुई या नाख़ून से छिरोंट देते थे और उनका रक्त चूसते थे, ऐसा करने में उनको बड़ा आनंद आता था। छिः! कैसा अत्याचार!! इसी प्रकार और भी कितनी ही बातें हैं जिनको स्मरण करते ही हृदय दहल जाता है। उनका यहाँ उल्लेख करना भी महान् लज्जा की बात है।

इन्हीं दो-चार शब्दों से पाठकों ने अनुमान कर लिया होगा कि आजकल समाज में स्त्रियों का क्या स्थान है। अब मैं इस घृणित विषय को बहुत विस्तार देना नहीं चाहती। फिर भी यहाँ योरप इत्यादि की स्त्रियों की स्थिति का कुछ ज़िक्र कर देना आवश्यक समझती हूँ। हम लोग समझते हैं कि योरप की स्त्रियाँ

उन्नतिशील हैं, पुरुषों का उनपर अनुचित दबाव नहीं है। घर को वे बन्दीगृह के बजाय प्रेम का स्वच्छन्द उपवन समझती हैं, इत्यादि। किन्तु विचारपूर्वक देखा जाय तो कुछ और ही प्रतीत होगा। वहाँ की स्त्रियों का नैतिक पतन आवश्यकता से कहीं अधिक हो गया है। वहाँ स्त्री-समाज ने उन्नति अवश्य की है, पर वास्तविक अधिकार से वह अब भी वञ्चित है। परिवर्तन केवल इतना ही हुआ है कि जिस प्रकार पुरुष उनको अपने मनोरञ्जन की सामग्री समझते थे, वैसे ही अब वे भी पुरुषों को अपने मनोरञ्जन की सामग्री समझने लगी हैं। अधिकाँश स्त्रियाँ अब बहुत दिनों तक अविवाहिता ही रहती हैं, ताकि कुछ न कुछ पुरुष सदैव उनके पीछे पड़े रहें, अथवा उनसे विवाह की प्रार्थना करते रहें। बहुत सी तो सन्तान तक पैदा करना नहीं चाहतीं; क्योंकि ऐसा करने में व्यर्थ का कष्ट उठाना पड़ता है और विषय-सुख में सहायता पहुँचानेवाले यौवन का ह्रास होता है।

इतने ही से पाठक समझ गये होंगे कि पश्चिमी स्त्रियाँ कहाँ तक स्वतंत्र हैं और हमको उनका कहाँ तक अनुकरण करना चाहिये।

अब आजकल के ज़माने को देखकर यह कहना ही पड़ता है कि स्त्रियाँ पुरुषों के मनोरञ्जन की सामग्री सी होगई हैं; पर यथार्थ में वे हैं नहीं; और न कोई सच्चरित्र व्यक्ति इस बात को स्वीकार ही कर सकता है। स्त्रियों का इतना पतन पुरुषों में विलास-प्रियता के आने तथा उनमें धार्मिक श्रद्धा के कम हो जाने से ही

हुआ है, और जब तक इन दोनों बातों के दूर करने का प्रयत्न न किया जायगा तब तक स्त्री-समाज का उत्थान होना कठिन है। यदि होगा भी तो उसी प्रकार जैसा कि योरपीय स्त्रियों का। अर्थात् जैसे पुरुष स्त्रियों को अपने मनोविनोद के लिए समझते हैं वैसे ही स्त्रियाँ भी पुरुषों को मनोविनोद की वस्तु समझने लगेंगी, जिसका परिणाम बहुत ही भयङ्कर होगा।

जिसने प्रेम का वास्तविक अर्थ समझ लिया है, जिसके हृदय में वासना का वास नहीं है, जो स्त्री को आनन्द की वस्तु के बजाय आनन्द-रूप समझता है, जो उसे—

तुम्हीं खीर अति रुचिर मलाई, तुम स्वादिष्ट मिठाई हो।
गरमी में शर्बत, जाड़े में बन लिहाफ़ गरमाती हो॥

इस प्रकार सम्बोधन न कर अथवा ऐसा न समझ इस प्रकार समझता या कहता है कि—

तुम्हीं चन्द्रबदनी मम प्यारी जियत-मरत की साथी हो।
दम फटकर जाने लगता गर दम भर नहीं दिखाती हो॥

यथार्थ में वही पुरुष है और वही मनुष्य-समाज में रहने का पूर्ण अधिकारी है। "जियत मरत के साथी में" जो भाव है वह "स्वादिष्ट मिठाई" तथा "गरमी के शर्बत" अथवा "लिहाफ़ की गरमाहट" में नहीं आ सकता। एक पवित्र है, अन्तरात्मा से सम्बन्ध रखता है तथा दूसरा वासना से पूर्ण और वाह्य इन्द्रियों के क्षणिक सुख का द्योतक।

निस्सन्देह स्त्री जीवन-मरण की संगिनी है। उसे आनंद की सामग्री समझना मूर्खता है। उसे मनुष्य को अपना प्राण समझना चाहिये। उसको देवी समझकर अपने हृदय-मन्दिर में उचित स्थान देना चाहिये। एक स्त्री के रहते हुए दूसरी स्त्री की इच्छा करना बड़ा भारी पाप है। मेरी समझ में तो स्त्री की अनुपस्थिति अर्थात् उसके मर जाने पर भी अन्य स्त्री की इच्छा न करनी चाहिये। जिस प्रकार स्त्री, जिस पुरुष के साथ विवाह दी जाती है, आजन्म उसी की होकर रहती है, उसी प्रकार पुरुष को भी जीवन-पर्य्यन्त एक पत्नी-व्रत का पालन करना चाहिये। ऐसे ही पुरुषों और ऐसे ही स्त्रियों के बल पर यह मनुष्य-समाज स्थित है। इसी प्रकार के पुरुष और स्त्रियों की वृद्धि इसे उन्नति के शिखर पर पहुँचा सकती है। साथ ही साथ यह भी कहने में अत्युक्ति न होगी कि इसी प्रकार के पुरुष अथवा स्त्रियों का अभाव ही समाज के पतन का कारण होता है और उसका अस्तित्व तक मिटा देता है।

मैंने अपने पति को किस प्रकार वश में कर लिया ?

[नीचे एक ऐसी रमणी का बयान दिया जाता है जिसने अपनी अपूर्व चतुरता और लगन से अपने बिगड़े-दिल पति को बड़ी आसानी से अपने वश में कर लिया है ।]

जो मुझे ससुराल में झेलने पड़े हैं, उन कष्टों और कठिनाइयों का वर्णन करके मैं आपका समय नष्ट न करूँगी । यहाँ में सिर्फ़ उन्हीं युक्तियों का ज़िक्र करूँगी जिनके द्वारा मैं अपने प्रियतम की प्यारी बन गई हूँ ।

जिस प्रकार चतुर नाविक की दृष्टि कम्पास पर और ध्यान मंज़िले-मक़सूद (गन्तव्य स्थान) पर रहता है उसी प्रकार मैंने भी अपनी दृष्टि अपने गुणों पर और अपना ध्यान अपने पूज्य पति पर लगा दिया था । मैंने यह निश्चय कर लिया था कि यदि मुझमें वे गुण और आदतें आ जायँ जो मेरे पति एक स्त्री में पसन्द कर सकते हैं तो मैं अवश्य ही एक न एक दिन उनकी प्यारी बन जाऊँगी । इसके लिए मैंने सिर्फ़ दो बातों का जानना ज़रूरी समझाः—

(१) उनका स्वभाव कैसा है ?

(२) वे कैसी स्त्री पसन्द करते हैं ?

यदि आप विचार करेंगी तो आप को भी मालूम हो जायगा

कि पति को प्रसन्न करने के लिए सब से पहले इन्हीं दो बातों के जानने की आवश्यकता है। शेष सारा मकान इन्हीं दो बातों की नींव पर खड़ा होगा।

स्वभाव का जानना बहुत ही आवश्यक है, दूसरी बात तो उसी के अन्तर्गत है। किसी भी मनुष्य को .खुश करने की सब से सरल तरकीब यही है कि आप उसके स्वभाव के अनुसार कार्य्य करें या अपना स्वभाव वैसा ही बना लें, जैसा उसका हो। क्योंकि—

प्रकृति मिल मन मिलत हैं, अनमिल ते न मिलाय।
दूध दही ते जमत है काँजो ते फट जाय॥

मैंने अपने पति का स्वभाव जानने के लिए तीन बातें सोचीं—

(१) वे कैसी किताबें पढ़ते हैं।

(२) कैसी तस्वीरें अपने कमरे में टाँगते हैं।

(३) कैसे आदमियों के साथ अधिकतर रहते हैं।

जब इन तीनों बातों की कसौटी पर उनको कसा तो मैं उनके स्वभाव के विषय में बहुत कुछ जान गई। आप भी इन्हीं तीन बातों से अपने पति की परीक्षा कर सकती हैं। इस परीक्षा के साथ ही आपको उनका स्वभाव मालूम हो जायगा।

यहाँ मैं एक बात कह देना आवश्यक समझती हूँ कि पति के स्वभाव के अनुसार सदैव चलना उचित नहीं है। यदि पति का ऐसा स्वभाव है कि उससे भविष्य में भयङ्कर विपत्तिओं की सम्भा-

बना है तो उसका यथाशक्ति विरोध ही करना उचित है। मेरे पति शराब पीते थे, परन्तु मुझको शराब से बड़ी घृणा थी। एक रोज़ उन्होंने कहा—"यदि तुम आज शराब न पिओगी तो मैं कलसे तुमसे न बोलूँगा।" यह मेरे लिए बड़ी बिकट समस्या थी। मैंने निश्चय किया—'बोलें चाहे नहीं, मैं शराब न पिऊँगी।' दूसरे दिन यही हुआ भी। पर अन्त में पति को ख़ुश करने के लिये मैंने शराब पी। इसके सिवा और कोई तरकीब ही नहीं थी। इससे मुझे लाभ भी हुआ। मैं अपने पति के साथियों से ख़ूब परिचित हो गयी। उन साथियों में से जो सब का सरदार था, उससे और पति देव से झगड़ा हो जाय, यही मेरी अभिलाषा थी और इसमें मुझे कामयाबी भी हुई। मैंने एक सहेली से पति से कहलवा दिया कि फ़लाना आदमी मुझे कुदृष्टि से देखता है।" बस इतना ही काफ़ी था। धीरे-धीरे पति-देव का समाज भले आदमियों का हो गया। अब न वे ही शराब पीते हैं, न मैं ही।

मेरे पति मुझे पसन्द न करते थे, वे वेश्यागामी थे। यह मेरे लिए असह्य था; पर मैं अपनी नाराज़गी उन पर ज़ाहिर न करती थी। परिणाम यह हुआ कि वे एक वेश्या की चर्चा, जिसे वे बहुत ही प्यार करते थे, मुझसे भी करने लगे। मैंने अपनी छाती पर पत्थर रखकर कहा—"अगर आप उसे इस घर में ले आते तो मैं आपकी और उसकी दोनों की सेवा करके अपना जीवन सफल समझती।" मेरी इन बातों का पति पर बड़ा प्रभाव पड़ा, वे एक प्रकार से लज्जित हुए।

मैं बहुत सुन्दर नहीं थी और न मुझे वेश्याओं के जैसे नाज़-नखरे ही आते थे। मैंने इन दोनों बातों के प्राप्त करने की भी चेष्टा की, पर मुझे इसमें पूर्ण कामयाबी नहीं हुई। फिर भी कतिपय साधनों से मैं पहले की अपेक्षा अधिक सुन्दरी बन चुकी थी। इसमें प्रातः काल की ताज़ी हवा, सबेरे का उठना, सफ़ाई, सदैव मुस्कराते रहना और सादगी इत्यादि से बड़ी सहायता मिली थी।

अब मेरे पति मुझसे बड़े प्रसन्न रहते हैं। उनमें केवल यही दोष रह गया है कि अन्य रूपवती स्त्रियों का जादू उन पर अब भी कभी-कभी चल जाता है, परन्तु मुझसे वे अपना यह अवगुण छिपाते नहीं। अब वे इसके लिये लज्जित भी होते हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि शीघ्र ही वे एक आदर्श पति बन जायँगे। जिन गुणों से मैंने उनके हृदय पर इस भाँति अधिकार जमा लिया है वे ये हैं—

(१) उनके स्वभाव के अनुसार चलना।

(२) जैसी स्त्री वे पसन्द करते हैं वैसी ही बनने की कोशिश करना।

(३) सहनशीलता।

(४) मधुर भाषण।

मुझे विश्वास है इन चार बातों से कोई भी स्त्री अपने पति को वश में कर सकती है।

तुम बोलती हो या शर्बत घोलती हो।

एक महिला के विचारों में—

मेरे पड़ोस में एक प्रोफ़ेसर साहब रहते थे। उनकी स्त्री बड़ी ही व्यवहार कुशल और दयावान थी। मैंने उसको कभी अप्रसन्न होते नहीं देखा। जब मैं उसके यहाँ जाती, वह द्वार ही से कहती—"आओ बहन, बड़ी दया की, बैठो! तुम मुझे बहुत भाती हो"·········इत्यादि। उसके इस बर्ताव से मैं उनके यहाँ अक्सर आने जाने लगी। यहाँ तक मेल-जोल बढ़ गया कि कभी कभी मैं रात को भी वहाँ सो रहती। एक दिन की बात है, वह बीमार पड़ गई। मैंने इस अवस्था में उसकी सेवा करना अपना कर्तव्य जाना। उस दिन मैं उन्हीं के यहाँ रही। तीसरे पहर जब वह सो गई तो मैं अकेली होने के कारण ऊबने लगी। मैं पास की आलमारी में पड़ी हुई किताबों को इधर उधर पलटना शुरू किया। पर मुझे कोई किताब पसन्द न आई। अतएव मैं अपनी पड़ोसिन के पास ही पड़े हुए एक पुराने रोजनामचे को पलटने लगी। उसे पढ़कर मुझे बहुत ही आश्चर्य हुआ। उस रोज़नामचे में जैसी अच्छी नीति की बातें लिखी थीं वैसी मैंने कहीं भी नहीं पढ़ी थीं। रोज़नामचे के अन्त में लिखा था—"कुछ याद रखने योग्य बातें।" उसी के नीचे लिखा था—"तुम बोलती

हो या शर्बत घोलती हो।" उसके नीचे कुछ और इसी प्रकार के वाक्य लिखे थे, जिनके विषय में फिर कभी चर्चा करूँगी।

मेरी समझ में न आया कि—"तुम बोलती हो या शर्बत घोलती हो" में कौन सी ऐसी बात है जिसके कारण इसकी गणना याद रखने योग्य बातों में है। मैं बड़ी देर तक इसी बात पर विचार करती रही, पर कुछ समझ में न आया। जब मैं अपने घर वापस आई तो दिन डूब चला था; पर पिताजी घर में न थे। मैंने अपनी माँ से पूछा—अम्मा पिताजी कहाँ गये हैं! उस समय वे न मालूम क्यों बड़े क्रोध में थीं। उन्होंने कहा—"भाड़ में"! माता के मुँह से ऐसे कटु शब्द सुनकर मेरे मुँह से सहसा निकल पड़ा—"तुम बोलती हो या ज़हर घोलती हो।" इसके थोड़ी ही देर बाद पिताजी एक हार लेकर आये—फिर उसे उन्होंने माता के अञ्चल में रख दिया। मेरी माता ने कहा—"अब कहाँ से निकला"! कहते तो थे—"वह सोनार ही मर गया है! उसके घर में आग लग गई है!" इसपर पिताजी बिना कुछ कहे-सुने बाहर चले गये।

उस दिन घर में किसी ने भोजन नहीं किया। मुझे भी खाने की इच्छा न हुई। मैं छत पर लेटे लेटे इन्हीं सब बातों पर ग़ौर कर रही थी।

उस समय मुझे—"तुम बोलती हो या शर्बत घोलती हो" का ठीक-ठीक अर्थ समझ में आ रहा था!

यथार्थ में मधुर भाषण से बढ़कर संसार में कोई वस्तु नहीं है। किसी ने कहा भी है—

वशीकरण इक मंत्र है परिहर बचन कठोर।

जिस प्रकार आखें सुन्दर सुन्दर दृश्य देखने के लिए उत्सुक रहती हैं; नाक भीनी भीनी मनोहर सुगन्ध के लिए लालायित रहती है; शरीर आराम चाहता है; जिह्वा स्वादिष्ट पदार्थों के आस्वादन का स्वप्न देखा करती है, ठीक उसी प्रकार हमारे कान सुरीले और प्रिय शब्दों को ही सुनना चाहते हैं। गाना-बजाना लोगों को इसीलिये प्रिय हैं कि उनसे मीठे शब्द निकलते हैं। कौवे की काँव काँव से कोयल की कू ! कू ! लोगों को अधिक भाती है। गधे का रेंकना कोई नहीं पसन्द करता। यही बातें मनुष्य की बोली के साथ भी हैं। जिसकी बोली कानों को भली मालूम होती है उसमें कितने ही अवगुण क्यों न हों, लोग उसको प्यार करते हैं। इसके विपरीत कटुवादी से—चाहे वह सर्व गुण सम्पन्न ही क्यों न हो—सब घृणा करते हैं।

बातचीत करना भी एक कला है। जिसे बातचीत करना नहीं आता वह कैसा ही विद्वान् क्यों न हो—जीवन-संग्राम में उसे कदापि सफलता प्राप्त नहीं होती। मेरा छोटा भाई एक रोज स्कूल न जाने के लिए झगड़ रहा था। माँ ने उसे बहुत डाँट-डपट दिखाई, पर वह न माना। अन्त में माता उसे मारने दौड़ी तो वह भाग कर मेरे पास चला आया। मैंने उसके आँसू पोंछे और उसका

मुख चूमकर कहा—'भैया, जाओ पढ़ आओ।" मेरे इतना कहने पर ही वह स्कूल चला गया। इसमें सन्देह नहीं कि मीठी बात बोलकर मनुष्य अपने शत्रु को भी अपने वश में कर लेता है।

संसार में आज तक जितनी भी बड़ी बड़ी लड़ाइयाँ हुई हैं उनमें से बहुतों का कारण कदाचित मधुर-भाषण का अभाव ही था। यदि द्रौपदी दुर्योधन को कटु वाक्य न कहती तो शायद महा-भारत का अवसर ही न आता। रावण अपने भाई विभीषण को न दुत्कारता तो शायद श्री रामचन्द्र जी उसे इतनी जल्दी न जीत सकते। इतिहास की बात जाने दीजिये। अपने ही जीवन की दैनिक घटनाओं पर ग़ौर कीजिये। जितने भी घरेलू झगड़े होते हैं या होते नज़र आते हैं सबका यही कारण है। लोगों को बातचीत करने का शहूर नहीं। कोई भी इस बात का ध्यान नहीं रखता कि हमारे शब्दों से सुननेवाला चिढ़ तो न जायगा? यही कारण है कि बात-बात में लोग लड़ बैठते हैं।

सास-पतोहू, ननँद-भौजाई, देवरानी-जेठानी प्रायः सभी आपस में इसी बातचीत की उचित रीति न जानने के कारण एक दूसरे से सन्तुष्ट नहीं रहती। इसी के कारण बड़े-बड़े घर, जहाँ प्रेम का प्रसार होना चाहिये, कलह के केन्द्र बने रहते हैं और सब प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के सामान उपस्थिति होते हुए भी सुख स्वप्न सा बना रहता है। ज़रा से ही फेरफार से मीठी बात किस प्रकार कटु हो जाती है, इस विषय को ठीक ठीक सम-झने के लिये यहाँ मैं एक ग्रामकहानी का उल्लेख किये देती हूँ—

कहते हैं, एक बार दो मित्र कहीं जा रहे थे। गर्मी का मौसम था; अतएव थोड़ी ही दूर चलने पर उनको प्यास मालूम हुई। पानी पीनेकी इच्छा से वे एक निकट के झोपड़े के द्वार पर, जिसमें एक बुढ़िया रहती थी, जा पहुँचे। एक ने कहा—"माता! प्यास लगी है ज़रा पानी पिला दो।" बुढ़िया ने कहा—"बैठो बेटा, ज़रूर पिलाऊँगी।" दूसरे ने सोचा—माता, पिता की स्त्री को कहते हैं; अतएव इसे वही कहना चाहिये। सम्भव है, पिता का खयाल करके जल्दी पानी पिला दे। वह बोला—"मेरे बाप की मेहर (पत्नी) मुझे पानी पिलाओ।" इसपर बुढ़िया बहुत चिढ़ी। वह डंडा लेकर मारने दौड़ी!

यद्यपि यह एक मनोरञ्जक चुटकुला है। पर इससे यह बात साफ़ प्रकट होती है कि हम अपनी बोली से ही लोगों को ख़ुश कर लेते हैं और बोली से ही नाख़ुश।

बातचीत का नियम बतलाते हुए एक अँगरेज़ कवि कहता है—

If you your lips,
Would keep from slips,
Five things observe with care.
To whom you speak,
Of whom you speak,
And how, and when and where.

अर्थात् यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारी ज़बान खाली न जाय तो निम्नलिखित पाँच बातों का ध्यान रक्खो।

(१) तुम किससे बात करते हो ।

(२) किसके विषय में बात करते हो ।

(३) कैसे बात करते हो ।

(४) कब बात करते हो और ।

(५) कहाँ बात करते हो ?

इसी बात को एक संस्कृत कवि ने इस प्रकार कहा है—

कः कालः कानि मित्राणि को देशः को व्ययागमो ।
कोवाऽहं काचमे शक्तिः इति चिन्तयं मुहुर्मुहुः ॥

अर्थात् बातचीत करते समय इन बातों को बार बार स्मरण करो—

(१) कैसा समय है ।

(२) कौन मित्र है ।

(३) कैसा देश है ।

(४) क्या हमारी आमदनी और क्या ख़र्च है ।

(५) मैं कौन हूँ ।

(६) और मुझमें क्या शक्ति है ।

पिता के घर में ज़बान जिस प्रकार चलती है पति के घर में उसकी वही गति नहीं रह सकती । बुद्धिमान स्त्री को यहाँ के लोगों की रुचि के अनुसार उसमें परिवर्तन करना चाहिये । इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिये कि बातचीत से किसी को दुःख न हो । कड़ुवी बात मनुष्य के हृदय में तीर की भाँति चुभ जाती है और उसका निकलना मुश्किल हो जाता है ।

बात मुँह के निकलते ही दूसरे की हो जाती है। अतएव ख़ूब सोच-विचारकर बोलना चाहिये। जहाँ तक हो सके, मीठी ही बात बोलनी चाहिये; क्योंकि इससे हानि कुछ नहीं और लाभ अनन्त हैं।

हाँ, यह बतलाना तो रहा ही जाता है कि मेरी पड़ोसिन ने इस लेख का शीर्षक अपने रोज़नामचे में क्यों लिख रक्खा था। दूसरे ही दिन जब मैं उसके यहाँ गयी तो—मैंने जाते ही कहा—"तुम बोलती हो या शरबत घोलती हो ?" इस पर उसने मुस्करा दिया और लज्जा की एक रेखा उसके मुँह पर दौड़ गई। उसने कहा—"तुमने मेरा रोज़नामचा पढ़ लिया क्या ?" मैंने कहा—"हाँ, पर कारण न जान सकी। "उसने हँसकर कहा—"एक रोज़ मेरे पति देव (प्रोफ़ेसर साहब) ने मेरे मधुर भाषण पर प्रसन्न होकर उक्त वाक्य कहा था। यह मुझे इतने प्रिय लगा कि मैंने इसको अपने रोज़नामचे पर अंकित कर लिया। तब से मैं इस बात का सदैव ध्यान रखती हूँ कि मेरे मुँह से कोई कटु शब्द न निकले।"

——

मुझे कैसी दुलहिन चाहिये

शीर्षक देखकर पाठिकाएँ यह न समझें कि मैं ब्याह करना चाहता हूँ और एक दुलहिन की तलाश में हूँ। इस लेख के लिखने का मतलब केवल इतना ही है कि हमारी बहनों को मालूम हो जाय कि लोग कैसी दुलहिनें पसन्द करते हैं और उन्हें कैसी बनना चाहिये या अपनी लड़कियों को कैसा बनाना चाहिये।

इधर लगभग तीन साल से ब्याह की समस्या पर मुझे बराबर विचार करना पड़ा है और इस विचार-सागर में डुबकियाँ लगाते-लगाते मुझे बहुत सी अमूल्य बातें मालूम हुई हैं, जिनसे यदि वे भाई बहनें, जो बिलकुल सोचने का कष्ट नहीं करते, कुछ लाभ उठाएँगे तो मैं समझूँगा मेरा समय आलस्य और व्यर्थ के चिन्तन में नहीं कटा।

इसमें शक नहीं कि जब मैं कहता हूँ कि मुझे कैसी दुलहिन चाहिए तो मैं अपने ही हृदय की भावनाओं और रुचि के अनुसार लिखूँगा। पर 'बटलोई में केवल एक चावल टटोला जाता है' के अनुसार मेरे स्वभाव से बहिनें तमाम पुरुषों की मनोवृत्ति का कुछ न कुछ परिचय प्राप्त कर ही लेंगी। क्योंकि जैसे स्त्रियों में कोमलता, लज्जा आदि गुण समान रूप से पाये जाते हैं वैसे ही पुरुषों में भी स्त्री-प्रेम समान रूप से विद्यमान रहता है।

यदि संसार में एक ही स्त्री होती तो वह लँगड़ी, लूली, कानी अन्धी चाहे जैसी होती, मैं उसी को पसन्द करता और उसके मुख के निकट अपना मुँह ले जाकर कहता—"प्यारी, मैं तेरे बिना एक मिनट भी जीवित नहीं रह सकता।" पर संसार में एक नहीं, अनेक स्त्रियाँ हैं। इसलिये हर एक आदमी उनमें से अपनी रुचि के अनुसार चुनाव करता है। हमारे सामने भी यही चुनाव का प्रश्न मौजूद है। आप किसी बग़ीचे में जाइए और उसमें से आपको सिर्फ़ एक फूल तोड़ना हो, तो आप सर्वोत्तम पुष्प की ओर हाथ बढ़ायेंगे, यदि उसे न पा सकेंगे तो और घटिया—यहाँ तक कि लाचारी दरजे पर—एक सूखा और पृथ्वी पर पड़ा हुआ पुष्प ही लेकर चले आयेंगे। इसी प्रकार पुरुषों की भी आदत है। पहले सर्वोत्तम और उसके अभाव में जो मिल गई उसी से ब्याह करने को तैयार जाते हैं। आप कह सकते हैं कि जब मन के अनुसार स्त्री नहीं मिलती तो ब्याह

करना उचित नहीं है। ठीक है। मैंने भी इसीलिये व्याह नहीं किया। पर पुरुष के हृदय में स्त्री-प्रेम स्वाभाविक है। बिना स्त्री के वह जीवन में कोई सार नहीं देखता। सब पुरुष मेरे समान विवेकशील तो हैं नहीं (अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने के लिए पाठिकाएँ मुझे क्षमा करें)। इसलिए वे मनचाही स्त्री के अभाव में जो सामने आगई उसी से शादी कर लेते हैं। पर इस प्रकार जितने लोग शादी करते हैं उनमें एक कमज़ोरी शुरू से आख़ीर तक बनी रहती है। वह कमज़ोरी क्या है? यही कि ऐसे लोग अपनी विवाहिता स्त्री से किसी बात में भी सुन्दर नारी पाते ही विवाह बन्धन की पवित्रता को भूल जाते हैं। ऐसी शादी मैं कर लूँ तो सम्भव है मैं भी मौक़ा पड़ने पर इस पवित्र बन्धन की अवहेलना कर दूँ; पर है यह बड़ा घृणित, नीच और निन्द्य कर्म। सच्चा पुरुष तो वही है जो जिस स्त्री के साथ विवाह-बन्धन में बँध गया वह चाहे जैसी हो, अन्त तक उसीके साथ अपनी पवित्रता का पूर्ण निर्वाह करे।

मनुष्य और पशु में यही अन्तर है कि मनुष्य विवेकशील होता है। पर स्त्रियों के मामले में मैंने देखा है, पुरुष अपना सारा विवेक खो बैठते हैं। सृष्टि के आदि से यह नियम चला आता है कि लोग सुन्दर स्त्रियाँ पसन्द करते हैं। काले लम्बे केश, बड़ी-बड़ी आँखें, भरे हुए गाल, लाल होंठ, मन्द चाल और स्वच्छ वेष-भूषा। इसका दुष्परिणाम यह हुआ है कि केवल बाह्य सौन्दर्य्य पर ही मुग्ध

होकर स्त्री के चरणों पर मस्तक रख देना पुरुषों की आदत में दाखिल हो गया है। यह सब पुराने ढर्रे के संस्कार-वश होता है। यदि नवीन संतति का दृष्टि-कोण बदल दिया जाय तो वाह्य सौन्दर्य्य में इस समय जो अपार आकर्षण है उसका पता तक न चले।

पर इसका यह मतलब नहीं है कि मैं बाहिरी सुन्दरता के ख़िलाफ़ हूँ। यह तो एक आवश्यक वस्तु है। यह न हो तो आँखों से हम अपना रास्ता देख सकते हैं पर उनसे पीयूष-पान नहीं कर सकते! फिर भी मैं यह कहूँगा कि वाह्य सौन्दर्य्य पर मुग्ध होना निरा पागलपन है। और जिन स्त्रियों को केवल अपने वाह्य सौन्दर्य्य के कारण पति-प्रेम प्राप्त है उनको हम सौभाग्यवती नहीं कह सकते। मालूम नहीं, किस दिन क्षणिक सौन्दर्य्य रफ़ूचक्कर हो जाय और वे ठुकरा दी जायँ।

मेरे ब्याह का जब-जब प्रश्न उपस्थित होता है, मेरे हृदय और और मस्तिष्क में घोर द्वन्द्व आरम्भ हो जाता है। हृदय अपनी पाँचों इन्द्रियों द्वारा इस बात की जाँच करने का प्रयत्न करने लगता है कि वह स्त्री प्यार करने की वस्तु है या नहीं। यदि उसमें प्रेमाकर्षण अर्थात् सुडौल शरीर, मनोहर चितवन, अनुकूल हास्य, सुधासिक्त वाणी और मधुर सुकुमारता है तो वह मचल जाता है। दिल की इस दशा को किसी कवि ने निम्नलिखित लाइनों में बड़ी ख़ूबी के साथ व्यक्त किया है।

जहाँ दौड़ी नज़र देखा उधर ही एक नयी सूरत।
दिले नादाँ मचलता है कि मैं तो बस यही लूँगा॥

ऐसे नादान दिल के हाथ में जो जोड़ी पसन्द करने की स्वतन्त्रता दे देते हैं उनका वैवाहिक जीवन सदैव सुखमय नहीं होता। पाश्चात्य देशों में, जहाँ जोड़ी पसन्द करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है, दुःखान्त विवाहों की अधिकता का यही कारण है कि वहाँ लोग अपने हृदय को बे-लगाम का घोड़ा बनाये रहते हैं।

मस्तिष्क सुन्दरता नहीं देखता, सुकुमारता नहीं देखता—मनोहर चितवन की उसे परवाह नहीं। वह केवल यह देखता है कि जीवन-यात्रा में वह स्त्री कहाँ तक उसका साथ दे सकती है। पर हृदय इतना प्रबल पड़ता है कि अकेले मस्तिष्क की राय पर कैसा ही दृढ़ व्यक्ति क्यों न हो, शादी नहीं कर सकता। इसलिये जब तक ऐसी स्त्री न मिले, जो दिल और दिमाग़ दोनों को आकर्षित करे तब तक शादी करने का अर्थ है जान-बूझकर अपने आप को बर्बाद करना।

जितने लोगों ने मेरे साथ अपनी पुत्रियों की शादी करने की इच्छा प्रकट की, सब से मैंने एक ही बात कही कि पहले मेरे स्वभाव को समझ लो और मेरे मुख से मेरे जीवन के उद्देश को सुन लो, फिर अपने घर जाकर यह देख लो कि लड़की का स्वभाव मेरे ही जैसा है या नहीं और वह मेरे जीवन के उद्देश को अपना उद्देश बनायेगी या नहीं। यदि हाँ, तो मेरा मस्तिष्क राज़ी होगया। अब मेरे दिल को राज़ी करो। पर मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि मेरे मस्तिष्क की शर्तों को कोई भी पूरी नहीं कर सका।

बहुत से लोग आकर कहते हैं—"साहब लड़की को चलकर देख लो।" पर वह यह नहीं जानते कि लड़की को देखने के बाद शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जो उसके गुण-अवगुण पर विचार करे; क्योंकि प्रत्येक सुन्दर स्त्री में हर एक को आकर्षित करने की शक्ति होती है और जो आकर्षित होगया वह उसके अवगुण को भी, जब तक आकर्षण निर्बल न पड़ जाय, गुण ही समझता रहता है। इसलिये मैं यह सोचकर कि जब दिल मचल जायगा तो दिमाग़ की एक न चलेगी, किसी लड़की को देखने नहीं गया।

यह मेरे अपने ख़ास विचार हैं। पर मेरा ख़याल है कि इन बातों को सामने रखकर जो पुरुष या स्त्री अपने विवाह करेंगे उनका वैवाहिक जीवन सब प्रकार से आनन्दमय और उन्नतिशील होगा।

यदि मैं पति होती—

[स्त्रियाँ अपने पतियों से कैसा व्यवहार चाहती हैं यह बात नीचे दिये गये एक स्त्री के बयान से प्रकट हो सकती है।]

यदि मैं पति होती तो अपने प्यारे पति देव को (जो उससमय मेरी पत्नी होते और बन्द खिड़की की साँस से—जब मैं घर से बाहर जाने लगती—मुझे देखनें का प्रयत्न करते) एक दम पर्दे से मुक्त कर देती। वे जिस मनुष्य से चाहते, मिलते; मैं कभी किसी प्रकार की आपत्ति न करती। आजकल कोई भी मनुष्य अपनी युवा स्त्री पर विश्वास नहीं करता। इसके दो ही कारण हो सकते हैं। या तो पुरुष इतने चरित्रहीन होगये हैं कि वे किसी भी स्त्री की इज़्ज़त का ख़याल नहीं रखते या स्त्रियाँ ही अपने कर्त्तव्यों को भूल बैठी हैं। कोई भी पुरुष अपनी स्त्री को, किसी अन्य पुरुष के साथ, अकेली नहीं छोड़ता; क्योंकि वह दो में से एक का भी विश्वास नहीं करता। लोग अपनी स्त्री को उनके भाई या पिता के साथ रहने में आपत्ति नहीं करते; क्योंकि उन्हें इस बात का विश्वास रहता है कि स्त्री उनको भाई या पिता समझेगी, और वे उसको बहन या बेटी समझेंगे। यद्यपि पुरुषों को यह उपदेश दिया जाता है कि वे स्त्रियों को आयु के अनुसार माता, बहन,

या बेटी समझें परन्तु इस उपदेश पर किसी का पूर्ण रूप से विश्वास नहीं है। इसी प्रकार स्त्रियों से भी कहा जाता है कि वे अपने पति के सिवा संसार के समस्त पुरुषों को पिता, भाई, या पुत्र समझें। परन्तु क्या ऐसा कोई स्त्री समझती है ? मैं तो कहूँगी कि नहीं; क्योंकि यदि ऐसा भाव हृदय में होता तो आज परदे का इतना भयङ्कर प्रचार न होता। क्या कोई स्त्री अपने पिता, भाई या पुत्र से भी परदा करती है ? मेरी समझ में नहीं। और न करना चाहिये। फिर परदा किसलिये ? आप कहेंगे—"मुसलमानों के शासन-काल से ये सब कुरीतियाँ आ गयी हैं। डर के मारे स्त्रियाँ परदे में रहने लगीं।" धर्म की रक्षा जान देने से होती है, छिपने से नहीं छिपना कायरता है। जब से स्त्रियाँ छिपने लगीं तभी से उनमें कायरता आगयी। फिर कायर स्त्रियों के गर्भ से वीर बच्चे क्योंकर जन्म लेने लगे ! भारत की इस अधोगति का यही मुख्य कारण है। मैं पति होती तो सब से पहले इसी कारण को दूर करने का यत्न करती। अपनी स्त्री का विश्वास करती, उसे धर्म पर मरने के लिए उत्साहित करती। यदि स्त्रियाँ मुसलमानों से न डरतीं (यही न होता कि उनको अपनी पवित्रता बनाये रखने के लिए प्राण त्याग करना पड़ता) तो कुछ ही दिनों में मुसलमान परेशान हो जाते और हिन्दू-स्त्रियों की ओर कुदृष्टि से देखने का भी साहस न करते। वह पति जो परदे में स्त्रीत्व की रक्षा समझता है, निकम्मा है। ऐसे कितने ही पतियों की स्त्रियाँ (इतिहास इस बात का साक्षी है) मुसलमान लोग छीन ले गये हैं और उनके

साथ निकाह भी किया है । यदि मरकर धर्म बचाने की रीति होती, तो पति-पत्नी दोनों मरकर अपना नाम अमर कर जाते और परदा तथा बाल-विवाह जैसी कुप्रथाओं की सृष्टि न होती। मैं प्राण देकर अपने धर्म की रक्षा करती और अपनी पत्नी से भी ऐसा ही कराती। जो दम्पति इस विषय को नहीं समझते, मेरी तुच्छ समझ में वे विवाह के अधिकारी नहीं है।

आजकल लोगों की यह धारणा होगयी है कि स्त्रियों का बड़प्पन इसी में है कि वे अपने को पतियों के चरणों की धूलि समझें। यही पातिव्रत धर्म है। स्त्रियाँ ही यदि ऐसा समझतीं तो कोई बात नहीं थी। जिस पति को वे प्यार करती हैं, जो उनके लिए परमेश्वर-तुल्य है, उसके चरणों की धूलि को भी अपने से बढ़कर समझना प्रेम की सीमा को पार कर जाना है। किन्तु पुरुष ऐसा क्यों समझें? जब से पुरुष भी ऐसा ही समझने लगे, तभी से स्त्रियों के पतन का परदा उठा। ऐसा कौन है जो अपने ही पैरों की धूलि अपने ही सिर पर चढ़ाले? बस स्त्रियाँ पग-धूलि से प्रेम करते ही धूलि में मिल गयीं। निस्सन्देह पुरुषों ने स्त्रियों की इस अपार भक्ति से अनुचित लाभ उठाया है। मैं पति होते ही इस लाभ को तिलाञ्जलि दे देती। मैं स्वपत्नी को पैरों की धूलि के बजाय गले का हार तथा माथे का तिलक समझती। मैं सब पतियों से इस विषय पर विचार करने की प्रार्थना करती हूँ और मुझे पूर्ण आशा है कि इस लेख को पढ़ने के बाद कोई भी पति अपनी पत्नी को अपने पैरों की जूती कहने या समझने का साहस न करेगा।

गृहकार्य्य का भार मेरी स्त्री पर होता और द्रव्योपार्जन तथा उसकी रक्षा का मेरे ऊपर। किन्तु मैं सदैव इसी स्थिति को न रहने देती। मैं अपनी स्त्री को इस योग्य बनाने का प्रयत्न करती कि वह अपनी रक्षा स्वयं कर सके तथा आवश्यकता पड़ने पर अपनी जीविका चलाने के लिए द्रव्योपार्जन भी कर सके। हमारे देश में स्त्रियाँ इतनी नासमझ, निरुपाय और निरावलम्ब होती हैं कि पति के न रहने पर उनकी दुर्दशा हो जाती है। यदि स्त्रियों में स्वतंत्र रूप से जीवन-निर्वाह करने की शक्ति होती तो आज इस देश की जवान विधवाएँ एक मात्र उदर-पोषण के लिए व्यभिचार के दलदल में न फँसती। इसके साथ ही मैं भी गृहकार्य्य में भाग लेती और उसकी पूरी-पूरी जानकारी रखती, ताकि पत्नी का वियोग होने पर मैं बिना पुनर्विवाह किये ही अपनी तथा अपने बाल-बच्चों की भली भाँति सेवा सुश्रूषा कर लेती। इस प्रकार मुझमें गृहकार्य्य की जानकारी तथा मेरी स्त्री में उचित रीति से द्रव्योपार्जन करने की शक्ति रहने के कारण हम लोग एक-दूसरे के सुख-दुःख में पूर्ण रूप से भाग ले सकते। यदि एक को दूसरे का वियोग होता तो भी सिर्फ़ एक प्रकार की मानसिक चिन्ता के सिवा और किसी भाँति का कष्ट न होता।

जो लोग एक स्त्री के मर जाने पर पुनर्विवाह करते हैं, मेरी समझ में वे स्त्री-वञ्चक हैं; क्योंकि विवाह-बन्धन इसी लोक में नहीं टूट जाता है। ऐसे पुरुषों को उसी प्रकार का अपराधी समझना चाहिये जैसा समाज पुनर्विवाह करनेवाली अथवा पति-

वञ्चक स्त्रियों को समझती है। मैं यदि अभाग्यवश स्त्री-हीन हो जाती तो कदापि पुनर्विवाह न करती। मैं पत्नी-व्रत का पूर्ण रूप से पालन करती और लाखों की तादाद में लोग मेरा अनुकरण करते।

एक बड़ी आवश्यक बात भूली जा रही है। आजकल लोग इतने विषयी हो गये हैं कि वे अपनी स्त्रियों के स्वास्थ्य का किञ्चित मात्र भी ध्यान न करके निरन्तर विषय-सुख-लाभ में लिप्त रहते हैं। मैं इसका पूर्ण विरोध करती, संयम से रहती और स्वास्थ्य-शास्त्र के नियमों का उचित रीति से पालन करती।

सन्तान का प्रश्न भी यों ही छोड़ देने लायक़ नहीं है। आज कल स्त्रियाँ लड़कों के लिए लालायित रहती हैं। मिन्नतें मानती हैं, क़बरें पूजती हैं, ताकि उनके सन्तान हो। मेरी समझ में इससे बढ़कर और कोई भूल नहीं हो सकती। इस ग़रीब देश में लड़कों की इतनी अधिकता हो रही है कि ९० सैकड़ा बच्चों का पालन-पोषण भी होना कठिन है। बहुत सी स्त्रियाँ तो ऐसी हैं जो प्रति वर्ष एक बच्चा जनती हैं। घर में खाने को नहीं और बच्चों की इस क़दर बाढ़! इसी विषय को दर्शाते हुए किसी कवि-सम्मेलन में "दिन गाढ़े" समस्या की पूर्ति इस प्रकार की गई थी:—

पास भये इत बी० ए० पिया,
सु तिया ने उतै सुत पै सुत काढ़े।
खान न पान को योग कछू,
यमदूत से आय भये सब ठाढ़े॥

यौवन को थिर जोश भयो,
दुख दारिद के बड़वानल बाढ़े।
काहे समस्या न आज मिलै,
कवि-मण्डल में कहिये दिन गाढ़े॥

यथार्थ में आजकल इस देश की यही दशा है। मेरी समझ में प्रत्येक दम्पति को उतने ही बच्चे पैदा करने चाहिये जितनों का वे आसानी से पालन-पोषण कर सकें। मैं यदि पति होती तो संयम से रहती या कुछ ऐसे नियमों का पालन करती जो मेरी स्त्री को ढेर के ढेर बच्चों की माता होने से बचाते।

पति के क्या कर्त्तव्य हैं, मेरी समझ में यह प्रत्येक पति को भली भाँति जानना चाहिये। मैं भी उस अवस्था में इस प्रकार की जानकारी से वञ्चित न रहती। सब से अधिक ध्यान मुझे इस बात का रहता कि मेरी पत्नी को किसी प्रकार का कष्ट न हो।

स्वराज्य का विषय छूटा जा रहा है। प्रत्येक भारतवासी का स्वराज्य-संग्राम में भाग लेना धर्म होना चाहिये। मैं भी इस स्वतंत्रता के युद्ध-स्थल पर जमे बिना न रहती, अपनी पत्नी को चरखा चलाने के लिए मजबूर करती। उसके तन पर सिवा खद्दर के और किसी प्रकार का सूत न रहने देती। देश में माँ की पुकार होती तो जेल भी जाती और आवश्यकता पड़ने पर प्राण-त्याग करने से भी न हिचकती। ऐसे अवसरों पर मेरी पत्नी अवश्य मेरा अनुकरण करती और दोनों या तो स्वतंत्र भारत की पुण्यस्थली में विचरते या एक-दूसरे का परस्परालिङ्गन करते हुए सर्वदा के लिए सो जाते!

बलात्कार

आजकल हिन्दू स्त्रियों पर चारों तरफ़ बलात्कार हो रहा है। कोई युवा स्त्री घर से निकली, थोड़ी दूर अकेली गई; बस दो-चार गुण्डे उसके पीछे लग गये और ज़रा भी मौक़ा पाया तो उसे ज़बरदस्ती पकड़कर किसी निर्जन स्थान में ले गये। उसने ज़्यादा चीं-पटाख़ किया तो उसके हाथ-पैर बाँध दिये, मुँह में कपड़ा ठूँस दिया! डरवाया, धमकाया, अपनी पैशाचिक वृत्ति शान्ति की और उसका जीवन नष्ट करके, जूँठे दोने की भाँति, इधर उधर लुढ़कने के लिए छोड़ दिया। पञ्जाब, संयुक्त-प्रान्त, बङ्गला, बिहार, मदरास और बम्बई—सर्वत्र यही अन्धेर मचा है। रेलों पर मेलों में, स्टेशनों पर, गलियों में, मन्दिरों में—जहाँ भी जाइये, बलात्कार की बदबू प्लेग के कीड़ों की भाँति तेजी के साथ फैलती हुई मिलेगी।

थोड़े दिन हुए, हमारे ही मुहल्ले में एक अहीर की लड़की को, जो क़रीब आठ-नौ बजे रात अपने घर से बाहर पेशाब करने

निकली, गुण्डे उसके मुँह में कपड़ा ठूँसकर उसे पकड़ ले गये ! आज तक उसका कुछ पता नहीं चला। बेचारे माँ-बाप हाथ मल कर रह गये !

गत २६ अप्रैल को प्रातःकाल बनारस में एक नाबालिग़ हिन्दू लड़की पकड़ी गई थी। कहते हैं, कुछ मुसलमान उसे बलात्कार के लिए उड़ा लाये थे। मामला अदालत में चल रहा है। लड़की की उमर सिर्फ़ १४ वर्ष की बतलायी जाती है। चौदह वर्ष तो बहुत होते हैं। भूपाल से 'वर्तमान' का संवाददाता लिखता है—

"१३ अप्रैल को भूपाल की पातर नदी पर एक हिन्दू धोबिन कपड़े धो रही थी। उसके साथ उसकी ६ वर्षीया कन्या भी थी। दो बजे दोपहर को एक मुसलमान आया और कहने लगा कि मुझे परदेश जाना है। मेरा घर पास ही है, वहाँ से कछ कपड़े लाकर धो दो। मैं तुमको दुगनी मज़दूरी दूँगा, बेचारी धोबिन ने लोभवश अपनी उस बच्ची को उस धूर्त के साथ भेज दिया।

संध्या को ५ बजे तक जब वह कन्या नहीं लौटी, तो धोबिन अधीर होकर उसको ढूँढ़ने लगी। नज़दीक ही ऐशबाग़ में उसको उसकी पुत्री अचेत और बुरी अवस्था में पड़ी हुई मिली। उसकी जंघा पर ख़ून लगा हुआ था। इसी दुर्दशा में रोती हुई वह उसे थाने में ले गई। पुलिस ने रिपोर्ट लिखकर कन्या को अस्पताल पहुँचाया। अस्पताल में उसकी गुप्तेन्द्रिय में सात

टाँके लगाये गये। पुलिस ने उस नरपिशाच का अभी तक पता नहीं लगा पाया है।"

९ वर्ष की बालिकाओं पर भी बलात्कार होता है, यह सुनकर किसी को आश्चर्य्य न करना चाहिये। कलकत्ते में एक नर-पिशाच ने ३॥ साढ़े तीन ही वर्ष की अबोध बालिका को अधमरी कर दिया। "विश्वमित्र" में प्रकाशित हुआ है—

"अलीपुर के डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट ने बेहाला के आशुतोष मोदक नामक अभियुक्त को साढ़े तीन वर्ष की एक अबोध बालिका के साथ अत्याचार करने के अपराध में सेशन सुपुर्द किया है। कहा जाता है कि उस लड़की के पिता ने अभियुक्त को अपने घर में भोजन के लिए आमन्त्रित किया था। भोजन के बाद अभियुक्त और लड़की के पिता एक बरामदे में सो रहे। लड़की बाहर अपने भाई के साथ खेलती रही। लड़की के पिता थोड़ी देर बाद शोर-गुल सुनकर उठ बैठे। उन्होंने अभियुक्त को भागते हुए देखा—लड़की खून में डूबी हुई पाई गयी। लड़की बड़ी नाजुक अवस्था में अस्पताल में पड़ी हुई है!"

२५।५।२४ के "प्रेम" में छपा है—

"एक दिन दिल्ली के स्टेशन पर एक रेलवे मुलाज़िम ने एक हिन्दू महिला की बेइज्ज़ती की। जब वह स्टेशन पर बिना टिकट उतरी, तो जी० आई० पी० रेलवे का एक भिश्ती उसे दूर वाले प्लेट-फ़ार्म पर फुसलाकर ले गया। वहाँ से वह उसे ज़बरन एक गाड़ी में ले गया और उसकी आबरू ली। सब इन्सपेक्टर पुलिस

ने उसे गिरफ़्तार कर लिया है। पुलिस के सामने उसने अपने अपराध को स्वीकार किया है। अभियुक्त हवालात में है।"

रेलवेस्टेशनों और चलती गाड़ियों में भी ऐसी दुर्घटनाएँ अकसर हुआ करती हैं। गार्ड, स्टेशन-मास्टर, उनके असिस्टैंट, टिकट-कलेक्टर, पानी-पांड़े, भिश्ती, कुली-कबारी, रेलवे-पुलिस के आदमो सभी सदैव इस बात की घात में रहते हैं कि कोई स्त्री कहीं अकेली जा तो नहीं रही है!

१९।५।२४ के "स्वतंत्र" में छपा है—

"बाँकुड़ा की अदालत में एक मामला चल रहा है जिसमें ए० रोज़ारिओ नामक एक एंग्लो-इण्डियन गार्ड पर, कुछ दिन हुए, रांची-एक्सप्रेस में यात्रा करनेवाली एक भारतीय महिला पर बांकुड़ा स्टेशन के समीप बलात्कार करने की चेष्टा करने का अभियोग लगाया गया है। दूसरे डब्बे के एक सज्जन ने महिला का चिल्लाना सुनकर जंज़ीर खींचकर गाड़ी को खड़ी कराया। उसी गाड़ी में जानेवाले बाँकुड़ा के डिपुटी-मैजिस्ट्रेट मौ० लहाजुद्दीन अहमद ने रेलवे-पुलिस को अभियुक्त को गिरफ़्तार कर जाँच करने का हुक्म दिया। अभियुक्त की सहायता करने वाला दूसरा ऐंग्लो-इण्डियन भी गिरफ़्तार किया गया है। इस मामले से शहर में बड़ी सनसनी फैली हुई है। पुलिस ने अपनी रिपोर्ट भेज दी है और मामला शीघ्र ही डिपुटी-मैजिस्ट्रेट के इजलास में शुरू होगा।"

स्त्री और बालिकाओं पर ही यह अत्याचार नहीं हो रहा है। भोले-भाले अबोध बालक भी बिगाड़े जा रहे हैं।

६ । ५ । २४ से "हलधर" में प्रकाशित हुआ है—

"बनारस के ज्वाइन्ट-मैजिस्ट्रेट श्रीयुत दर साहब की अदालत में एक दस वर्ष के बालक के साथ बलात्कार (अप्राकृतिक व्यभिचार) करने का मुक़दमा चल रहा है। अभियोग यह है कि गिरजा-शंकर नामक एक २५ वर्ष के व्यक्ति ने महकी नामक दस वर्ष के सुन्दर बालक के साथ ज़बरदस्ती बलात्कार किया और हीरालाल ने उसमें मदद दी, जिससे बालक के चोट भी आ गई। यह कुकर्म हनुमानजी के मन्दिर में (जो बाज़ार में आम रास्ते पर है) हुआ है।"

भोपाल में भी एक दर्ज़ी का लड़का गायब है। उसका ज़िक्र करते हुए ५ । ५ । २४ के भारतमित्र ने लिखा है:—

"सुना जाता है, कुछ मुसलमान उसे जबर्दस्ती पकड़ कर ले गये हैं। वह भूपाल के किसी मकान में बन्द है। उसके मुसलमान बनाये जाने की भी खबर है। यहाँ बाज़ारों में चलते हुए हिन्दू लड़के छेड़े जाते हैं। यदि कोई दूसरा बोलता है तो मुसलमान तुरन्त मारने पर उतारू हो जाते हैं। दूसरे रास्ता चलते हुए मुसलमान कह दिया करते हैं कि आप क्या जानते हैं? भूपाल में मुसलमानों का यही ढङ्ग है।"

"अभ्युदय" लिखता है—

"आजकल चारों ओर से हिन्दू स्त्रियों और बालकों पर मुस्लिम गुण्डों के आक्रमण के समाचार आ रहे हैं। अभी पिछले

दो-चार दिनों में स्थानीय जमना-ब्रिज पर एक पासी अपनी लड़की को लिये चला जा रहा था। कुछ गुण्डों ने आक्रमण किया और वे उस लड़की को लेकर भाग गये। मामला न्यायालय में है। यह अपने क़िस्म की अकेली घटना नहीं है। प्रत्येक समाचार-पत्र में, चाहे वह बंगाल का हो, पञ्जाब का हो, युक्तप्रान्त का हो और चाहे दक्षिण का, एक न एक ऐसे समाचार प्रकाशित होते रहते हैं। हम जानना चाहते हैं कि मुस्लिम नेता अपनी जाति को बदनाम होने से बचाने के लिए इस सम्बन्ध में क्या प्रयत्न कर रहे हैं? इसके साथ ही साथ हम यह भी जानना चाहते हैं कि हिन्दू जाति अपनी माताओं, बहनों और बालकों की रक्षा का क्या प्रबन्ध कर रही है। फोड़ा नासूर का रूप धारण करता जा रहा है और अगर शीघ्र ही कोई प्रबन्ध नहीं किया जायगा तो आगे चलकर यह जान का ही ग्राहक हो जायगा।"

जिस जाति के स्त्री और बच्चों की ऐसी दुर्दशा हो वह निर्जीव है। पुरुषार्थ रहते हुए कोई जाति अपनी आँखों के सामने अपनी बहू-बेटियों की ऐसी बेइज़्ज़ती नहीं देख सकती। जो लोग कभी कभी जोश में आकर गाते हैं:—

यूनान मिश्र रोमां सब मिट गये जहाँ से।
लेकिन है अब भी बाक़ी नामों निशां हमारा॥

उनसे मेरा निवेदन है कि वे बजाय गाने के रोवें। रोवें इस बात के लिए कि हम भी न मिट गये। इस अपमान-पूर्ण जीवन से मिट्टी में मिल जाना कहीं अच्छा था। वीर जातियाँ अपने

सम्मान के साथ जीती हैं और अपमान के साथ मरती हैं। जो चुपचाप अपमान सह लेता है वह बेहया है, वह अपनी लज्जा को धोकर पी चुका है। मेरा तो अनुमान है कि इस हिन्दू जाति का आज संसार में सब से बढ़कर आदर होता, यदि यह मिट गयी होती! जीवित रहकर इसने अपने पूर्वजों की विमल कीर्ति पर स्याही पोत दी है!

चारों तरफ़ लोग चिल्लाते हैं—"हिन्दू स्त्री और बच्चों को मुसलमान लोग सता रहे हैं।" यह कोई नहीं सोचता—"क्यों सता रहे हैं?" यद्यपि दूध बिल्ली की ख़ूराक है और वह उसे सदैव हड़प जाने के लिए तैयार रहती है; पर जब तक वह गरम रहता है बिल्ली दुम दबाये बैठी रहती है, दूध-पात्र को छू तक नहीं सकती। केवल साहस और संघ ही मनुष्य-समाज के दूध को गरम रखते हैं। किन्तु हममें न साहस है न संघ, तो फिर बिल्लियाँ क्यों न झपटें।

यद्यपि हमारी स्त्रियों पर बलात्कार करनेवाले गुण्डों में मुसलमानों की संख्या अधिक है, पर हिन्दू भी इस पैशाचिक वृत्ति से सर्वथा बरी नहीं हैं। 'जननी सम जानहिं पर नारी' का अन्वय मैंने एक महाशय को इस प्रकार करते सुना है—'पर-जननी नारी सम जानहिं'। हो गई न बेहयायी की हद! जिस समाज में ऐसे-ऐसे विचारशील महापुरुष लोग वर्तमान हैं उसकी क़बर पर दीपक जलानेवाला शायद ही कोई रहे।

बङ्गाल में एडवोकेट जनरल श्रीयुत एस० आर० दास की अध्यक्षता में अबला-रक्षक नाम का एक सङ्घ स्थापित हुआ है। वह स्थान-स्थान पर घूम कर असहाय स्त्रियों की रक्षा का प्रबन्ध करेगा। हमारे प्रान्त में भी कहीं-कहीं महाबीर-दल और बज्राङ्ग-दल इत्यादि नामों से कुछ अर्द्धशिक्षित लोग अपनी शारीरिक स्थिति ठीक करने के निमत्ति एकत्र होने लगे हैं। किन्तु मेरी समझ में बिना साहस के संघ वैसा ही है जैसा बिना सिर के शरीर।

मुझे अब यह कहते हुए शरम नहीं लगती की हमारा पुरुष-समाज नपुंसक होगया है। वह स्वयं तो महापतन के खड्ढे में गिरा ही, अपने साथ स्वआश्रिता अबलाओं को भी खींच ले गया। नहीं तो धधकती आग में हँसते-हँसते प्रवेश करनेवाली ललनाएँ आज बलात्कार सरीखे अत्याचार सहकर भी रोकर न रह जातीं!

इन कायर पुरुषों से मुझे कुछ नहीं कहना है। गीदड़ों को समर-भूमि की ओर कोई नहीं ले जा सकता। चूहे बिल्ली को पकड़ने के लिए तैयार हो सकते हैं 'पर म्याऊँ का ठौर कौन पकड़ेगा' वाला प्रश्न उनको तितर-बितर कर देने के लिए काफ़ी है। यहाँ मैं अपनी बहनों से ही कुछ कहूँगा।

स्त्रियों की लज्जा पुरुषों ने कभी नहीं बचाई। इसके लिए उन्हें स्वयं लड़ना पड़ा है। राजपूताने की वीर क्षत्रानियाँ हज़ारों की तादाद में एक साथ न जलतीं तो राजपूत बीर मरकर मिट्टी में

मिल जाते, पर अपनी स्त्रियों को मुसलमानों के चंगुल से न छुड़ा सकते। रावण के फन्दे में फँसी सीता को राम ने छुड़ाया है अवश्य; पर सीता के सतीत्व की रक्षा का श्रेय सीता को ही है। यदि सीता में साहस, धैर्य, धर्म इत्यादि बातें न होतीं, वे रावण से डर जातीं तो रामचन्द्र संसार की सेना लेकर भी उनके सतीत्व की रक्षा न कर सकते। बन में भटकती असहाय दमयन्ती की रक्षा के समय नल अपनी रण-चातुरी-सहित अन्तर्धान थे! पद्मिनी यदि जीती अग्नि में प्रवेश न करती तो अलाउद्दीन के चंगुल में फँस चुकी थी, उसने अपनी सतीत्व-रक्षा स्वयं की। कहने का तात्पर्य्य यह कि पुरुष स्त्री का पालन-पोषण कर सकता है, परन्तु उसके सतीत्व की रक्षा का उत्तरदायित्व उस पर नहीं है। थोड़ी देर के लिए मान लीजिये, वह उसकी रक्षा करते-करते मर गया, पर शत्रु जीता ही है। अब बताइये; यदि स्त्री अपना प्राण-विसर्जन के लिए तैयार नहीं है तो उस बेचारे मृतात्मा का क्या दोष?

आजकल भी वही स्थिति सी आ गयी है। पुरुष स्त्री के पीछे-पीछे कहाँ-कहाँ फिरेगा और किससे किससे-लड़ेगा। और यदि लड़ते-लड़ते मर गया तो? जिन स्त्रियों का धर्म में विश्वास है, सतीत्व को ज्यों का त्यों क़ायम रखना जो अपना सर्वोत्तम सुख और सम्मान समझती हैं, उनको अपनी रक्षा का भार पुरुषों पर कदापि न छोड़ना चाहिये। यह उनका निजी कर्तव्य है। यही बहुत है कि इस कर्तव्य का पालन करने में उन्हें पुरुषों से सहायता

मिल जाय। यद्यपि बलात्कार ज़बरदस्ती को कहते हैं, पर कोई पुरुष धर्म के विषय में जान पर खेलनेवाली स्त्री के साथ जीते जी ज़बरदस्ती नहीं कर सकता। जो स्त्री बलात्कार सरीखा अपमान सहकर भी जीवित रहती है वह कायर है। ऐसी ही स्त्रियाँ कुछ दिनों में वेश्या-वृत्ति स्वीकार कर लेती हैं।

इस समय हमारी बहू-बेटियों को धार्मिक शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है। जितनी ही उच्च कोटि की धार्मिक शिक्षा दी जायगी उतने ही दर्जे में कायरता का ह्रास होगा और ज्यों ज्यों कायरता घटेगी त्यों त्यों उनके हृदयों में साहस का सञ्चार होगा, और साहस ही आत्म-रक्षा का मुख्य अस्त्र है। मेरी तुच्छ समझ में हिन्दू स्त्रियों को बलात्कार जैसी घृणित आपत्तियों से बचाने के लिए संघठन इत्यादि की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी धार्मिक श्रद्धा की। प्रत्येक माता-पिता को यह ध्यान में रखना चाहिये कि उन्हें पुत्री पैदा करने का अधिकार नहीं है, यदि वे उसे धर्म पर मर मिटने के लिए तैयार कर देने में समर्थ नहीं हैं। जब तक ऐसे भाव-भरे माता-पिता न होंगे, आदर्श कन्याएँ दुर्लभ हैं। जब आदर्श कन्याएँ ही नहीं तो वीर पुत्र कहाँ? जब दोनों का अभाव है तो बलात्कार कैसे बन्द हो सकता है?

——

माँ-बाप और बच्चे

बालक क्या चाहता है, इस बात को ठीक-ठीक जान लेना माता-पिता के लिए परम आवश्यक है। बहुत सी माताओं को इसकी जानकारी ऐसी अच्छी होती है कि वे इस विषय पर किताब लिखनेवालों को वर्षों पढ़ा सकती हैं। पर मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि अधिकांश माताएँ—पढ़ी-लिखी माताएँ भी—इस सम्बन्ध में कुछ नहीं जानतीं और न जानने की कोशिश ही करती हैं।

जो माताएँ शिशु-स्वभाव से ख़ूब परिचित होती हैं और जो उसके पढ़ाने-लिखाने की उपयुक्त रीतियाँ जानती रहती हैं, वे भी कभी-कभी एक भूल कर बैठती हैं। वह भूल क्या है? यही कि वे यह नहीं सोच सकतीं कि उनमें और बच्चे में पारस्परिक सम्बन्ध कैसा होना चाहिये?

बच्चा इस संसार में आ गया है, इसका यह अर्थ नहीं है कि आपने कृपा करके उसे बुला लिया है। यदि हम यही मान लें तो भी आपको यह कहने का अधिकार नहीं है कि—"अरे मूर्ख बच्चे! मैंने तुझे पैदा किया, अच्छे-अच्छे कपड़े पहनाये, अच्छी अच्छी चीज़ें खाने को दीं और तू इन बातों का ज़रा भी एहसान

नहीं मानता !" एहसान कैसा जनाब ! आपने तो केवल अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। आप अपना कर्त्तव्य देखिये, बच्चा जब बड़ा होगा, समझने लगेगा, तब वह भी आपके प्रति अपने कर्त्तव्य की बात सोचेगा।

आप बड़े हैं और वह छोटा है, इस बात को तो बच्चा आँखों से ही आपकी भूधराकार सूरत देखकर जान लेता होगा, इससे कहने की क्या ज़रूरत है ? आपके बड़े होने का यह मतलब नहीं है कि आप बच्चे को उल्लू ,पाजी, नालायक़ जो चाहें, कहते रहें और वह चुपचाप सुनता रहे। क्योंकि छोटा होने के कारण उसे बड़ों की बातों का जवाब देने का अधिकार नहीं है। यह बड़े-छोटे के भाव का बन्धन बच्चों के हृदय को ऐसा बाँध देता है कि वे बोल-चाल की स्वतन्त्रता ही खो बैठते हैं। हम लोगों में जो हर एक बात में "हाँ !" कह देने की आदत है वह यही बचपन का संस्कार है।

घर में कोई आदमी आया और आपने बच्चों से कहा—"लो ! फलाने साहब पधारे हैं, इन्हें प्रणाम करो, हाथ जोड़ो।" श्रीमान् फलाने साहब को आप ही हाथ जोड़ लें, बच्चा जब हाथ जोड़ने लायक़ होगा तो आपके कहने की बाट न देखेगा। इस प्रकार तहज़ीब नहीं सिखाई जाती। आपका कर्त्तव्य है कि आप वह काम ख़ुद करते रहें जो बच्चे से कराना चाहते हैं। आपकी देखा-देखी वह ख़ुद ही करने लगेगा। जल्दी मचाने की क्या ज़रूरत है ?

हाँ, मैंने ऊपर एहसान का ज़िक्र किया था, बच्चे पर माँ-बाप का कोई एहसान नहीं है। न उसके ऊपर कोई जवाबदेही है, न जिम्मेदारी, न उनके प्रति कोई कर्त्तव्य; क्योंकि वह कुछ जानता ही नहीं। पर माँ-बाप को उसका एहसानमन्द होना चाहिए; क्योंकि उसने उनके जीवन में एक नये प्रेम की धारा बहाई है। बच्चे के प्रति माँ-बाप का कर्त्तव्य बहुत बड़ा है और उनकी जिम्मेदारी तथा जवाब-देही का तो कुछ ठिकाना ही नहीं है। माँ-बाप का यह कर्त्तव्य है कि वे चाहे जैसे हों बच्चे को तन्दुरुस्त और प्रसन्न रक्खें, उसे इस योग्य बनावें कि वह संसार-सागर में बड़ा होने पर अपने जीवन का जहाज़ छोड़ दे और जिधर चाहे ले जाय। यदि बच्चा इस संसार-यात्रा में कामयाब नहीं होता है तो इसमें उसका बिलकुल दोष नहीं है। क्योंकि उसे योग्यता या अयोग्यता, अच्छाई या बुराई, बहादुरी या कायरता दोनों ही माँ-बाप से मिलती हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे शारीरिक रोग आदि। इसीलिये किसी विद्वान् ने कहा है कि जो माँ-बाप बच्चों का सुधार करना चाहते हैं उन्हें चाहिये कि वे पहले अपना सुधार करें।

कुटुम्ब का राजा कौन है? आप कहेंगे कुटुम्ब का सबसे वृद्ध और योग्य व्यक्ति। पर इसमें मैं आपसे सहमत नहीं हूँ। कुटुम्ब का राजा बच्चा है। सारा कुटुम्ब उसके इर्द-गिर्द वैसे ही घूमता है जैसे सूर्य्य के चारों तरफ़ नवग्रह। यहाँ मेरे कहने का यह मतलब नहीं है कि आप बच्चे के लाड़-प्यार की हद कर दें,

उसकी अनुचित इच्छाओं की पूर्ति का उपाय करने लगें। इन बातों से तो बालक के ज़िद्दी हो जाने का भय रहता है। हाँ, उसको राजा का आसन तब तक मिला रहना चाहिये जब तक वह इस बात को न समझे। जब वह समझने लगे कि मैं कुटुम्ब का राजा हूँ, तभी उसको इस आसन से हटाकर उस श्रेणी में कर देना चाहिये जिसमें कुटुम्ब के और सब प्राणी रहते हैं। उसका यह अधिकार एकदम नहीं, ज्यों ज्यों वह बड़ा हो, त्यों त्यों कम करना चाहिये। ज्यों-ज्यों उसका अधिकार कम होता जायगा त्यों-त्यों उसके प्रति आपकी जवाबदेही और जिम्मेदारी भी कम होती जायगी, पर आपके प्रति उसकी जवाबदेही और जिम्मेदारी बढ़ती जायगी। मतलब यह कि बड़ा होने पर वह स्वयं आपके एहसान का भार अपने सिर पर अनुभव करने लगेगा। इसीलिये मुझे ऊपर लिखना पड़ा कि कच्ची उमर में अर्थात् जब वह एहसान का भार उठा ही नहीं सकता, उसे इससे दूर रखना चाहिये।

बच्चा अपनी आवश्यकताओं को जानता है, पर उनकी पूर्ति करने का सामर्थ्य उसमें नहीं है। उसमें अपनी आवश्यकताओं के कहने का भी बल नहीं है। वह अबोध है, अजान है, ऐसी दशा में आपका कर्त्तव्य है कि आप उसकी आवश्यकताओं को जानें और उन्हें पूरा करें। उदाहरण के लिए बच्चा यह जानता है कि उसे साफ़ कपड़ा पहनना चाहिये। पर वह उन्हें साफ़ नहीं रख सकता, खेल-कूद में मैला कर डालता है। अब आपका यह कर्त्तव्य नहीं है कि उससे कपड़ों के मैला कर देने का जवाब

तलब करें। उसने मैला कर दिया है तो आप साफ़ कर दीजिये! यही आपका कर्त्तव्य है। बिगड़ने से, मारने से, कपड़ों के साथ ही, बच्चा रो-रोकर अपना मुँह भी मैला कर लेगा, जिसे आप बच्चे को बिना हँसाये या प्रसन्न किये केवल पानी से धोकर नहीं ठीक कर सकते। इसी प्रकार बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं। ख़ैर। आप यह पूछ सकते हैं कि बच्चों की आवश्यकताओं को ठीक-ठीक कैसे जाना जा सकता है? सुनिये, आप बच्चों की आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकते हैं। पर आप उन्हें तब तक पूर्ण नहीं कर सकते जब तक उन्हें जानें न; और आप उन्हें जान भी तब तक नहीं सकते जब तक उन्हीं के दृष्टि-कोण से विचार न करें। आप बच्चों के दृष्टि-कोण से विचार भी नहीं कर सकते यदि आप स्वयं बच्चे बनकर अपने बीते बचपन को स्मरण न करें।

बहुत से लोग कहते हैं—"हम अपने बच्चों को—ख़ुद न पहन-कर—अच्छे-अच्छे कपड़े पहनाते हैं, ख़ुद न खाकर उन्हें अच्छी अच्छी चीज़ें खिलाते हैं, उनके पढ़ाने-लिखाने में हम इतना ख़र्च करतें हैं कि हमने अपना जीवन बड़ा सादा—संन्यासियों की तरह—बना लिया है।

इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे लोग आदर्श माता-पिताओं की श्रेणी में बैठाने योग्य हैं। पर मैं ऐसे व्यक्तियों की बहुत प्रशंसा नहीं कर सकता। उन्होंने अपनी उन्नति, अपना सुख, रोककर, बच्चे को सुखी और उन्नतशील बनाया ही तो क्या किया? ऐसे

ही माँ-बापों को बड़े होने पर बच्चे माँ-बाप कहने से शर्माते हैं। तब लोग कहते हैं, यह पश्चिमी सभ्यता का असर है। पर असल बात यह है कि माँ-बाप ने स्वयं घटकर स्वयं पिछड़कर बच्चे को आगे बढ़ाया है, जो न होना चाहिये था। दौड़ में उन्हें उससे आगे ही रहना चाहिये, पीछे नहीं। 'जो मैं नहीं कर सकता वह मेरा बेटा कर दिखावेगा," यह धारणा उचित नहीं है। आप जो कर सकते हैं वह आप कर दिखावें, बेटे पर न छोड़ें; साथ ही बेटे को इस योग्य बना दें कि वह आपका कार्य्य नहीं, अपना कार्य्य पूरा करे।

एक बात मैं लिखना भूल गया, उसी को लिखकर इस कथन को समाप्त करता हूँ। इधर-उधर दौड़ना, शोर मचाना, दंगे करना इत्यादि बातें बालक के लिए स्वाभाविक हैं। पर शान्तिप्रिय माता पिता इसे सहन नहीं कर सकते, वे उन्हें निरन्तर डाँटते और चुप रहने का आदेश देते रहते हैं। मेरी समझ में ऐसे लोगों को माँ-बाप होने से पहले यह जान लेना चाहिये था कि बच्चों का स्वभाव कैसा होता है। यदि अनजान में बच्चा हुआ है तो अपनी शान्ति बनाये रखने के लिए उसके स्वभाव का दमन करना एक भूल पर दूसरी भूल करना है—उसपर अनुचित बल-प्रयोग करना है।

——

बच्चों का पालन-पोषण कैसे करना चाहिए

[इस सम्बन्ध में एक अविवाहिता युवती के निम्नलिखित विचार पढ़ने योग्य है।]

मेरे न लड़का है, न लड़की। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं इस विषय में कुछ लिखने की अधिकारिणी नहीं हूँ। कहावत है कि तमाशा करनेवालों की अपेक्षा तमाशा देखनेवाले बहुत कुछ समझ जाते हैं।

एक बार मैंने अपने स्कूल में फ्रान्स की राज्य-क्रान्ति की एक तसवीर देखी। उस तसवीर का मुझ पर बड़ा प्रभाव पड़ा, तसवीर में निम्नलिखित भाव व्यक्त किया गया था—

"पेरिस नगर में क्रान्तिकारियों की सेना लूट-मार करती और आग लगाती चली आ रही थी। एक कोने में एक दुखिया माता अपनी तीन लड़कियों और एक आठ साल के छोटे बालक को लिये खड़ी थी और डर से काँप रही थी। जब सेना उस ओर बढ़ी तो उस आठ साल के नन्हें बालक ने अपनी नन्हीं सी खेलने की लकड़ी की तलवार म्यान से बाहर खींच ली और डाँटकर कहा—"खबरदार! इधर मत आना,"। सेना जहाँ की तहाँ खड़ी रह गयी। उस नन्हें सिपाही का जादू सब पर चल गया। किसी

को आगे बढ़ने की हिम्मत न हुई। आठ बरस के बच्चे ने अपनी माता और बहनों की रक्षा कर ली।"

हमारे देश के बच्चे सिपाही का नाम सुनते ही डर से काँप उठते हैं और माता के लँहगे में घुस जाते हैं। इसका कारण क्या है? यही कि हम लोग उन्हें रोते से चुप कराने के लिए भय दिलाते हैं। नतीजा यह होता है कि वे सदा के लिए डरपोक हो जाते हैं और बड़े होने पर भी स्त्रियों की रक्षा, जो उनका प्रधान धर्म है, नहीं कर सकते। हिन्दू-मुसलमानों के मामूली मामूली झगड़ों में देखा गया है कि लोग स्त्रियों और लड़कियों को ईश्वर के भरोसे छोड़कर भाग निकले हैं। इसमें लोगों का क़सूर नहीं है, उनको स्त्रियों की रक्षा करने का कर्त्तव्य सिखाया ही नहीं गया। हर एक माता का कर्त्तव्य है कि वह अपने लड़कों में स्त्रियों और लड़कियों की रक्षा करने का भाव सबसे पहले भरे। अगर यह बात लड़कपन में न सिखाई गयी तो बड़े होने पर वे अपने प्राणों का मोह सब से अधिक करेंगे और इस कथन की पुष्टि करेंगे कि जो प्राणों का मोह करता है वह अपने कर्तव्य का पालन किसी अंश में भी नहीं कर सकता।

जन्म लेने के समय से जब लड़के स्कूल में पढ़ने जाते हैं तब तक के उनके चरित्र-निर्माण पर लड़कियों की अपेक्षा अधिक ध्यान देना चाहिये। क्योंकि उसके बाद लड़कों पर माता का प्रभाव नहीं पड़ सकेगा। यदि सात वर्ष की आयु तक कोई बालक अपनी सच्चरित्रा और होशियार माता के पास रह गया

तो पश्चात् उसे चाहे जहाँ छोड़ दीजिये, उसका स्वभाव नहीं बदल सकता। लड़के लड़कियों की अपेक्षा अधिक चञ्चल और शरारती होते हैं, इसलिये भी माता को उनपर विशेष दृष्टि रखना चाहिये। माता को यह देखना चाहिये कि उसका बालक कैसा है। माता-पिता के किन-किन गुणों अवगुणों को उसने ग्रहण किया है। डरपोक है या बहादुर, सच्चा है या धोखेबाज़, उदार है या स्वार्थी; आदि। यह देखने के बाद उसे बालक में अच्छे गुणों का विकास और अवगुणों को दबाने की चेष्टा करनी चाहिये। लड़कों को बताना चाहिये कि उनमें फलाँ-फलाँ अच्छे गुण हैं और उन गुणों की उन्नति करने के लिए उन्हें उत्साहित करना चाहिये।

माताओं में मैंने यह ख़ास बात देखी कि उनमें बच्चों को कुछ सिखाने की अपेक्षा उन्हें सुन्दर-सुन्दर गहनों और कपड़ों से सजाने की प्रवृत्ति अधिक रहती है। माताओं को यह सोचना चाहिये कि जब बच्चे उनसे दूर हो जायँगे और उनके हाथ वहाँ तक नहीं पहुँच सकेंगे तो उन्हें कौन सजायेगा? जो माताएँ ख़ुद न सज कर अपने बच्चों को सजाती हैं उनके बच्चे सोचने लगते हैं कि सजने-सजाने के लिए उन्हीं को जन्म मिला है, माँ या बहनों को नहीं। बस धीरे-धीरे वे स्वार्थी हो जाते हैं। यही कारण है कि वे बड़े होने पर अपने आमोद-प्रमोद का, औरों की अपेक्षा, अधिक ध्यान रखते हैं। लड़कियों को कम आदर दिया जाता है और लड़कों को अधिक। इसका परिणाम यह होता है कि बड़े होने

पर लोग स्त्रियों का आदर करना ही भूल जाते हैं। हम स्त्रियाँ इस बात की शिकायत करती हैं कि पुरुष लोग हमारा आदर नहीं करते, हमारी परवाह नहीं करते। पर हमीं अपने हाथों लड़कों के दिमाग़ों में अपने अनादर का बीज बोती हैं। यदि हम लड़कियों का आदर करें तो हमारे लड़के भी लड़कियों का आदर करेंगे और बड़े होने पर वे तमाम नारी जाति का आदर करने लगेंगे। अमेरिका आदि देशों में लोग अपनी लड़कियों का बड़ा आदर करते हैं। इसलिये बचपन के संस्कार के अनुसार वहाँ के लोग बड़े होने पर अपनी स्त्रियों का महान आदर करते हैं।

लड़कों के हर एक प्रश्न का हर समय उत्तर देना चाहिये। हाँ, यदि लड़के हमेशा ही सवाल करते रहें और घर में मेहमान आदि आयें तब भी न मानें, तो उन्हें समझा देना चाहिये कि सब के सामने बातें मत पूछा करो। मुमकिन है, कोई तुम्हारी बातों में अपना समय न नष्ट करना चाहे। तर्क-वितर्क करने की आदत अच्छी है। लोगों का ख़याल है कि ऐसी आदत से लड़के अपनी वंश-परम्परा की नीति छोड़ देते हैं। मेरी समझ में ऐसा नहीं हो सकता, यदि किसी चीज़ को वे ठीक-ठीक समझ गये हैं तो उसके विरुद्ध नहीं जा सकते। पर जिस कर्त्तव्य को वे समझते नहीं, उसके सम्पादन की उनसे आशा करना ही व्यर्थ है।

जब मैं किसी लड़के के अवगुणी होने की बात सुनती हूँ तो मेरे दिल में यही बात उठती है कि माँ ने अपनी असावधानी से बेचारे का जीवन नष्ट कर दिया। बच्चों के पालन-पोषण का यह

अर्थ नहीं है कि हम केवल उनकी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करें। जब तक हम उनके हृदय के भावों को न समझेंगी और उसके अनुसार उनकी मानसिक उन्नति का प्रबन्ध न करेंगी तब तक हम इस विद्या में निपुण नहीं कहला सकतीं। यह दूसरी बात है कि हम हर साल एक बच्चा पैदा करें और अनेक बच्चों की माता कहलायें।

बालक-बालिकाओं के बालों की रक्षा

बचपन में जिन लड़कियों के बाल सुन्दर, मुलायम और घने होते हैं, वे जब तेरह-चौदह वर्ष की होती हैं तो उनके बालों में प्रायः वह बात नहीं रह जाती। वे बिगड़ने लगते हैं या छोटे हो जाते हैं। माताओं को यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है, किन्तु यह अकारण नहीं है। यदि बचपन में शिशु के बालों की उचित देख-रेख रक्खी जाय तो ऐसी ख़राबियाँ कदापि नहीं उत्पन्न हो सकतीं।

प्रत्येक माता को चाहिये कि वह अपने बच्चों के बालों को प्रतिदिन धोकर नर्म तौलिये से सुखा दे और मुलायम ब्रुश से उन्हें सँवार दे। जब बाल बढ़ने लगें और कुछ बड़े हो जायँ तो यह प्रतिदिन का धोना बन्द कर देना चाहिये। तीन-चार बरस के लड़के के लिए सप्ताह में एक बार साबुन इत्यादि की मदद से ख़ूब मलकर धो देना काफ़ी है।

बिना बालों को अच्छी तरह सुखाये बालक को इधर-उधर फिरने या खेलने-कूदने मत दो। कभी-कभी यह सर्दी और ज़ुकाम का कारण हो जाता है जो एक प्रकार से माता की असावधानी ही है। एक नन्हीं बच्ची के बालों को बहुत बढ़ने देना भी बुद्धिमानी नहीं है। नन्हीं बालिकाओंके केश सदैव समय-समय पर आवश्य-कतानुसार सिर से कुछ छोड़कर कतरती रहो। नन्हीं बालिकाओं

के बालों को बाँधने की राय तो मैं कदापि न दूँगा। बालों को कतर कर इतना छोटा कर दो कि उन्हें बाँधने की आवश्यकता ही न पड़े। यदि तुम्हें बालिका के बालों को बाँधने का ही शौक़ हो तो ख़ूब कसकर मत बाँधो और न ऐसा बाँधो कि खोलने में घंटों लग जायँ। मैंने देखा है कि ख़ूब कसकर बाँधे जाने के कारण ही बहुत सी लड़कियाँ चोटी करवाने से डरती हैं। इससे नुक़सान भी बहुत होता है। रात में सोने से पहले तो कसे बालों को अवश्य ही खोल देना चाहिये, ताकि वह नन्हा मस्तक तकिये पर आराम से निद्रा ले सके।

यदि घर में कई बच्चे हों तो उन सब के लिए अलग-अलग ब्रुश या कङ्घियों का प्रबन्ध करो। देखा गया है कि एक ही कंघी इस्तेमाल करने के कारण एक बच्चे के बालों में उत्पन्न हुआ रोग सभी बच्चों को हो जाता है। लड़कियों को यह हिदायत भी रहनी चाहिये कि वे स्कूल आदि स्थानों में अन्य लड़कियों की कंघी से परहेज़ किया करें।

यदि किसी बच्चे के बालों की जड़ में दाद या खाज हो जाय तो उस हिस्से के बाल को जड़ से कटवा दो और उस पर आयोडिन* लगाओ, या नीम की पत्ती में उबाले हुए पानी से, जब तक आरोग्य न हो जाय, प्रति दिन धोकर सुखाती रहो। यदि शीघ्र आराम होता हुआ न जान पड़े तो किसी वैद्य या डाक्टर की सलाह लो।

---

* सभी अँगरेज़ी दवा बेचनेवालों के यहाँ मिलती है।

बहुत सी माताएँ बालकों के बालों में जूँ या लीक देखते ही उन्हें जड़ से कतरवा देती हैं। यह ठीक नहीं है, केवल इसीलिये सुन्दर और बहुत परिश्रम से बढ़ाये गये केशों को नष्ट कर डालना उचित नहीं है। आज कल बाजारों में बहुत से ऐसे अर्क मिलते हैं जिनके लगाने से जूँ या लीक नष्ट हो जाती है। किन्तु ऐसी दवाइयों के इस्तेमाल के बाद बालों को लगातार कई दिन तक धोना और कंघी करना अच्छा है। क्योंकि इन दवाइयों के अधिक सेवन से बालों की जड़ें कमज़ोर पड़ जाती हैं।

बच्चों के लिये जहाँ तक हो सके सब से बढ़िया और लाभ-दायक साबुनों का ही व्यवहार करो। सुगन्धित और सस्ते साबुन की बहुत परवाह मत करो। क्योंकि ऐसे बहुत कम साबुन हैं जो चमड़े को हानि पहुंचाने वाली औषधियों से बचे हों।

बच्चों की आदतें

आदतें चाहे बुरी हों चाहे भली जब वे एक बार पड़ गई तो दूर नहीं होती। कपड़ा एक बार जहाँ से मोड़ कर तहाया जाता है दुबारा आप से आप वहीं से मुड़ने लगता है। पौदा जिधर झुका दिया जाता है पेड़ होने पर भी उधर ही झुका रहता है फिर उसे कोई सीधा नहीं कर सकता। लोहा जबतक लाल (तपा) रहता है तभी तक चाहे जिधर मोड़ा जा सकता है ठंडा होने पर उसको सुधारना कठिन है। ठीक यही हाल बच्चों की आदतों का है। जो माता इसका ध्यान नहीं रखती, वही अपने बच्चे के बिगाड़ का कारण होती है।

आपने देखा होगा बच्चों में नकल करने की आदत होती है। दूकानदार को देख कर वे मिट्टी की दूकान लगाते हैं, सवार को देख कर लकड़ी के घोड़े पर चढ़ते हैं, बन्दर देख कर चार पैर (हाथ-पाँव) से चलते हैं, लँगड़े को देख कर लँगड़ाने लगते हैं इत्यादि। समझदार माताएँ बालकों के सामने ऐसे उदाहरण रखती हैं जिनका उन पर सब प्रकार से अच्छा प्रभाव पड़ता है।

एक बार एक अमेरिकन विद्वान का लड़का शराब पीने के लिये मचलने लगा। आप जानते हैं वहाँ बूढ़े जवान बच्चे सभी शराब पीते हैं। माता बालक को ज़रासा शराब देने लगी। परन्तु पिता ने ऐसा न करने दिया। बालक बड़े ज़ोर-ज़ोर से रो रहा था। माँ ने कहा—"आज इसे थोड़ी सी शराब पी लेने दो, कल से कदापि न दूंगी"। इस पर पिता एक पत्थर और एक हथौड़ा लाया और हथौड़े से पत्थर पर चोट जमाने लगा। २५ बार चोट जमाने के बाद पत्थर के कई टुकड़े हो गये। पिता ने पूछा—"तुम बता सकती हो किस चोट से पत्थर टूटा है।" माता ने कहा—"टूटा तो २५ वीं चोट से है किन्तु इस अपराध में सभी बार की चोटें शामिल हैं।" पिता ने हँस कर उत्तर दिया—"ठीक इसी प्रकार बालकों की आदत बिगड़ती है। उनके पत्थर रूपी चरित्र पर अगर बुरी आदतों के हथौड़े पड़ने लगें तो यह तो अवश्य है कि आरम्भ की चोटों पर लोगों का कम ध्यान जायगा। परन्तु यही चोटें उसे इतना कमज़ोर कर देंगी कि उसे अन्तिम चोट से ऊपर कहे गये पत्थर की भाँति टूटना ही पड़ेगा।" अब यह बात माता की समझ में साफ-साफ आ गई और उसने बालक को शराब नहीं पीने दिया। कहते हैं इसी बालक ने बड़ा होकर अमेरिका में शराब पीने के विरुद्ध एक बड़ा भारी आन्दोलन खड़ा कर दिया जो अब तक जारी है।

प्रत्येक दिन की साधारण से साधारण घटनाओं का भी बालक के चरित्र पर बड़ा असर पड़ता है और अगर वही घट-

नाएँ दो एक महीने लगातार जारी रहीं तो बालक के हृदय में उनकी जड़ जम जाती है और उन्हीं घटनाओं के अनुसार उसकी आदत पड़ जाती है। मुझे एक माता का ध्यान है। वह दातौन कभी नहीं करती थी कदाचित उसकी यह धारणा थी कि स्त्रियों को दाँतौन करना ही न चाहिये। जो हो! एक दिन उसने अपने सात वर्ष के बालक से कहा—"तू कभी दाँतौन नहीं करता।" बालक ने तत्काल उत्तर दिया—"तू भी तो नहीं करती।" माता उस दिन से दाँतौन करने लगी। फिर उसे बालक से कभी दाँतौन करने के लिये नहीं कहना पड़ा।

प्रत्येक माता का यह कर्त्तव्य है कि वह बच्चों को जिस स्वभाव का बनाना चाहती है पहले अपना स्वभाव वैसा ही बना ले। माता को हाथ मुँह धोते देख बालक भी हाथ-मुँह धोवेगा। माता को प्रातःकाल उठते देख बालक भी प्रातः काल उठेगा। माता को रोते देख बालक भी रोवेगा और उसे हँसते देख बालक भी हँसेगा। यही शिशु स्वभाव का रहस्य है।

जिस प्रकार आप अपनी प्रशंसा सुन कर प्रसन्न होंगे वैसे ही बालक भी अपनी प्रशंसा सुन कर प्रसन्न होते हैं और भविष्य में ऐसे कार्य्य करने की चेष्टा करते हैं जिससे उनकी और प्रशंसा हो। अगर आप कहेंगे—"हमारा बेटा कभी झूठ नहीं बोलता।" तो वह कभी झूठ नहीं बोलेगा। इसके विपरीत अगर आप उसे झूठ न बोलने के लिये हिदायत करेंगे और सजा देने की धमकी देंगे तो वह भयभीत हो जायगा। और जो झूठ बोलेगा उसे छिपाने

की चेष्टा करेगा। इस प्रकार वह झूठ बोलना और धोका देना एक साथ ही सीखेगा।

बालक जो काम करते हैं अगर वह आपको पसन्द नहीं है तो उसके सामने ऐसे काम रखिये जिसे वे वैसा ही पसन्द करें जैसा उस काम को जिसे आप पसन्द नहीं करते। अगर ऐसा न किया गया और उनको रोका गया तो इसका परिणाम यह होगा कि वे एक अवगुण छोड़ दूसरा ग्रहण कर लेंगे। बुरी आदतों को सुधारने से यह कहीं अच्छा है कि वे पड़ने ही न पावें। "यह मत करो" की आज्ञा बालक इतनी जलदी नहीं समझ सकते जितना "यह करो" की। अतएव 'मत' का प्रश्न ही उनके सामने न आने देना चाहिये। उनको यह अनुभव करने का मौका देना चाहिये कि उनको कुछ करने की मनाही नहीं है। हाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वे उसी मार्ग पर चल रहे हैं जिसे आपने उनके लिये निश्चित किया है।

कुरूप बच्चे भी सुन्दर बन सकते हैं

प्रत्येक माता की यह लालसा होती है कि उसके बच्चे का शरीर सुडौल और चित्ताकर्षक हो। यही नहीं आरंभ में उसकी यहाँ तक धारणा हो जाती है कि उसके बच्चे के समान सुन्दर बच्चा कदाचित ही कोई हो। किन्तु बच्चा ज्यों ज्यों बढ़ता है तथा उसी आयु के अन्य सुन्दर बालकों के साथ खेलता है, उसके अङ्गों प्रत्यङ्गों का भद्दापन माता की निगाह में खटकने लगता है। वह मन ही मन अपने बच्चे में और बालकों की अपेक्षा सुन्दरता की कमी देख अत्यन्त दुखित होती है। कभी कभी वह ईश्वर के ऊपर नाराज़ होती है कि उसकी गोद में उसने क्यों ऐसी कुरूप संतान को जन्म दिया। किन्तु विचार करने से साफ प्रकट हो जायगा कि यह अपना ही दोष है। माता पिता जैसी सन्तान चाहें पैदा कर सकते हैं। तन, मन की सफाई, पारस्परिक प्रेम, चिन्ता, क्रोध, भय इत्यादि मानसिक विकारों का त्याग तथा मन में सदैव सुन्दर आत्माओं का आवाहन करते रहने से मन चाही सन्तान पैदा करने में कुछ भी संशय नहीं है। पर यदि असावधानी से ऐसा न किया गया और कुरूप संतान पैदा हो गई तो माता का क्या कर्त्तव्य है, वह उसे किस प्रकार सुन्दर बना सकती है, यहाँ हम इसी विषय पर विचार करेंगे।

सुन्दरता का सम्बन्ध रंग से नहीं शरीर की बनावट से है। यदि शरीर दुबला, पतला, रोगी हुआ तो कैसा ही गोरा बच्चा क्यों न हो—वह सर्वथा सौंदर्य हीन होगा। सबसे पहिले बच्चे की तन्दुरुस्ती पर ध्यान देने की आवश्यकता है। ज़रा मोटा, फूल सा फूला तथा स्वस्थ बच्चा सब को प्यारा लगता है। किन्तु यह सुन्दरता टिकाऊ नहीं होती बच्चा ज़रा भी बीमार हुआ, शरीर का मोटापन गया कि सुन्दरता जाती रहती है। अतएव माता को चाहिये कि वह बच्चे को किसी भी अवस्था में दुबला न होने दे। सदैव सावधान न रहने से तन्दुरुस्त से तन्दुरुस्त बच्चे भी दुबले हो जाते हैं। इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिये कि बच्चे का भोजन सादा, व स्वास्थ वर्धक हो, उसके कपड़े सादे हों, उनकी काट छाँट शरीर के अनुकूल हो, तथा वे उसे सर्दी, गर्मी, से बचाने में समर्थ हों। शरीर स्वच्छ रहे और वह कभी क्रोध इत्यादि न करने पावे।

किसी कवि का कहना है—"केश स्त्री-सौंदर्य का मुकुट है।" मेरी समझ में उसका कहना यथार्थ है। माताओं को स्मरण रखना चाहिए, कि काले, घने, लम्बे और घुंघुराले केश बड़े परिश्रम से प्राप्त होते हैं। लड़कों की बात जाने दीजिए लड़कियों को ऐसे ही केशों की आवश्यकता है।

जब बच्चा कुछ महीनों का हो जाय उसके केश साधारण पानी से (न बहुत गरम न बहुत ठंडा) धोना आरम्भ कर देना चाहिए। कम से कम तीसरे चौथे दिन अवश्य धोना चाहिये।

धोने के पश्चात् ही केशों का पानी स्वच्छ कपड़े से पोंछ कर सुखा देना चाहिए। जब वह ढाई या तीन बरस का हो जाय, केशों को साबुन इत्यादि से कम से कम सप्ताह में एक बार अच्छी तरह धो, सुखा कर हलके हाथों से कंघी करनी चाहिये। फिर उनको लाल या काले फीते से ढीला ढाला बाँध देना चाहिये ताकि वे आपस में उलझ न सकें। खूब कस कर बाल कभी भी न बाँधना चाहिये। जो ऐसा करते हैं उनका दिमाग़ कमजोर हो जाता है और बाल बढ़ नहीं सकते। कभी कभी कमज़ोरी के कारण बाल झड़ने लगते हैं। ऐसी अवस्था में केशों का कतरवा देना ही अधिक श्रेयस्कर है। सर में कभी कभी सरसों का तेल लगाते रहने, तथा समय समय पर साबुन, या यों ही खाली पानी से धोते रहने से बाल फिर उगने लगते हैं।

भौंहों और बरौनियों पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। यदि महीने में कम से कम दो बार भी बरौनियों के सिरे को जरा सा कतर दिया जाय तो वे बढ़कर काली और घनी हो जाती हैं। अंग्रेज लोग जब अपने बच्चों को स्नान कराते हैं या उनका मुँह धोते हैं—तो वे उनकी भौंहों पर कई बार दांत धोने वाले ब्रुश (Tooth brush) फेर देते हैं। इस प्रकार उनके बच्चों की भौंहें सुन्दरता के साथ भिन्न भिन्न दिशाओं की ओर आप से आप मुड़ जाती हैं। हमारे देश में लोग ब्रुश कम इस्तेमाल करते हैं। उसका काम अँगुलियों से लिया जा सकता है। सर में तेल लगाते समय भौंहों पर भी हाथ फेर देना चाहिए।

जब तक बच्चा ६ या ७ साल का नहीं हो लेता उसकी नाक बहुत ही मुलायम रहती है। इन दिनों में—मुँह धोते समय अँगूठे और बीच की अङ्गली से पकड़ कर भौं के नीचे से लेकर नाक के सिरे तक कई बार हलकी मालिस कर देनी चाहिए। ऐसा करने से नाक नुकीली हो जाती है हड्डी कड़ी हो जाने पर नाक का सुधारना कठिन है।

नाखूनों की भी अच्छी तरह देख भाल करनी चाहिए। बच्चे अधिक तर दाँत से नाखून चबा लेते हैं ऐसा न करने देना चाहिए। नाखूनों के अन्दर मैल भी न जमने देना चाहिए। महीने में—दो या तीन बार पैनी छुरी, या नहन्नी से नाखून के बढ़े हुए सिरे को काट देना उचित है। काटते समय इस बात का ध्यान रखना हितकर होगा कि नाखून का केवल उतना ही हिस्सा काटा जाय जो अँगुली से आगे बढ़ा हो।

भोजन के पश्चात् बच्चे के दातों को रगड़ कर धोना तथा उसे कई बार कुल्ली करानी चाहिए। प्रति दिन सबेरे बच्चों में दांतून करने की आदत डालना भी माता का ही कर्त्तव्य है। मोती से चमकते दाँत सुन्दरता के बढ़ाने में बड़ी सहायता करते हैं। जब दूध के दाँत गिर जाते हैं और नए दाँत निकलते हैं तो बच्चे उन्हें जीभ से ठेला करते हैं। ऐसा करने से दाँतों की व्यवस्था बिगड़ जाती है वे बिड़रे हो जाते हैं। किसी किसी के दाँत तो बाहर भी निकल आते हैं। दाँत गिरते तथा दाँत निकलते, दोनों समय बच्चों की निगरानी रखनी चाहिए।

कानों को भुला देना भी उचित नहीं है। कान खींच कर या कान पर बच्चों को न मारना चाहिये। कान सदैव खुले रहने चाहिएँ। जाड़ों में कन्टोप इत्यादि कस कर न बाँधना चाहिये। गुलूबन्द या तौलिए से भी कान बांधना उचित नहीं है। लड़कों के कान में पेंसल, पैसा, फूल, इत्र का फाहा इत्यादि कोई चीज़ न खोंसने देना चाहिये।

पैर के नाखून भी कम से कम सप्ताह में एक बार काटना चाहिये नहीं तो वे आप से आप टूटते २ मांस के रूप में परिणत हो जाते हैं। जूते जहां तक हो बच्चों को न पहिनाना चाहिये। सर्दी के दिनों में साधारण मोजे काफी हैं। लड़कपन में जूते पहिनाने से पैर कोमल व कमजोर हो जाते हैं।

बच्चों के खिलौने इतने ऊँचे होने चाहिए कि जब वे बैठें तो खिलौने सीने की ऊँचाई तक पहुँचते हों, छोटे खिलौनों से कमर झुक जाती है और कंधा टेढ़ा हो जाता है। उनको स्वयं खड़ा न कराना चाहिये। वे स्वयं खड़े होने और चलने का प्रयत्न करेंगे। वे बच्चे जिनको लोग मारे प्यार के हाथ पकड़ कर उठाते और बिना पैरों में यथेष्ट शक्ति आये चलाते हैं—अपनी टाँगें टेढ़ी कर लेते हैं। लड़कपन में हड्डियां बड़ी मुलायम रहती हैं। यदि किसी कारण से बच्चे के हाथ पांव टेढ़े हो जायँ तो घबड़ाना न चाहिये। उनको नित्य सीधा करने का यत्न करना चाहिये। हड्डी की कोमलता टेढ़े मेढ़े अङ्ग के सुडौल बनाने में सहायक होगी। हड्डी कड़ी होते ही शरीर का टेढ़ा पन किसी भी युक्ति से दूर नहीं हो सकता।

शरीर ही साफ और स्वच्छ रखने से सुन्दरता नहीं बढ़ती। इसके लिये मन में सुन्दर भावों का भरना भी आवश्यक है। बच्चे में आज्ञा का पालन करने, सब के साथ प्रेम का व्यवहार रखने, तथा सदैव प्रसन्न रहने की आदत आरम्भ से ही डालनी चाहिये। वह बच्चा जिसके मुख पर मृदुल मुस्कराहट की रेखा मौजूद है कुरूप नहीं कहा जा सकता। जो मनुष्य हँसमुख नहीं है, सदैव मुहर्रमी सूरत बनाये रहता है, चिड़चिड़ा है, वह कितना ही प्यार क्यों न करे—उसके पास स्वप्न में भी अपने बच्चे को न जाने देना चाहिये।

इसके अतिरिक्त चलना, फिरना, उठना, बैठना, लेटना, बातचीत करना, हँसना इत्यादि ऐसे ढंग से सिखाया जाय कि देखने, सुनने वाले को भला मालूम हो। जिन माताओं को नाटक इत्यादि देखने का अवसर प्राप्त हुआ होगा उन्होंने इस बात पर अवश्य गौर किया होगा कि नाटक के पात्र अपनी चाल ढाल से किस प्रकार शरीर को सुन्दर से सुन्दर और भद्दा से भद्दा बना लेते हैं। जिनको नाटक इत्यादि देखने का अवसर नहीं मिलता और न मिलेगा उन्हें सुन्दर सुन्दर चित्रों को देखना चाहिये। चित्राङ्कित बालक में जिन कारणों से सुन्दरता भावित हो उन्हीं का अपने बच्चों में प्रादुर्भाव करना चाहिये। हमें पूर्ण आशा है कि जो माताएं उपरोक्त बातों पर जरा भी ध्यान देंगी वे अपने कुरूप से कुरूप बालक को भी काफी सुन्दर बना लेंगी।

इंगलैंड में बच्चों के गोद लेने का तरीका

[बच्चे राष्ट्र की सम्पत्ति हैं। उनसे प्रेम करना राष्ट्र से प्रेम करना है और उनकी सहायता करना राष्ट्र की सहायता करना है। नीचे के लेख से आप को पता चलेगा कि आप किस प्रकार बच्चों की सहायता करके राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं]

इँगलैंड में स्त्री और बच्चों से सम्बन्ध रखने वाली कई एक संस्थाएँ हैं। यहाँ हम उनमें से एक पर विचार करेंगे।

इसे नेशनल चिल्ड्रन अडापशन असोसियेशन (National children adoption Association) कहते हैं। इसका काम है—उन लोगों को बच्चे देना जो उन्हें गोद लेना चाहते हैं और उन लोगों से बच्चे लेना जो ग़रीबी या किसी और कारण से उनका पालन पोषण नहीं करना चाहते। यह बिलकुल सार्वजनिक संस्था है। सरकार से इसका कुछ सम्बन्ध नहीं है। मिस क्लारा एन्ड्रू (Miss Clara Andrew) ने १९१७ ई० में इसे स्थापित किया था और अब भी वे ही इसका संचालन कर रही हैं। गत महायुद्ध में जब बेलजियम के बहुत से बच्चे अनाथ हो गये तो इँगलैंड में बेलजियम की सहायता करने के लिये एक संस्था बनी थी। कुछ समय के लिये बहुत से अँग्रेज़ परिवारों ने बेलजियम

के अनाथ बच्चों को अपने घरों में आश्रय दिया था। जब यह काम समाप्त हो गया तो मिस एन्डू का ध्यान अपने ही देश (इँगलैंड) के बच्चों की ओर आकृष्ट हुआ। जिन लोगों ने बेलजियम के बच्चों को अपने घरों में खेलने का अवसर दिया था उनसे एक प्रार्थना की गई कि वे अपने देश के बच्चों को भी जो वैसी ही दुर्दशा में हैं, आश्रय दें। लोगों ने इस प्रार्थना को स्वीकार किया, जिसके फल स्वरूप उपरोक्त समिति की स्थापना हुई। शीघ्र ही इसकी शाखाएँ चारों तरफ़ खोली गई और बच्चे गोद लेने वालों की अर्जियाँ अधिकाधिक संख्या में आने लगीं। जब काम बहुत बढ़ गया तो १९ स्लोन स्ट्रीट लंदन में इसका एक केन्द्र खोला गया और "हर रायल हाइनेस राजकुमारी एलाइस" इसकी सभा नेत्री नियुक्त हुई। जहाँ-जहाँ ब्रिटिश गवर्नमेंन्ट है, सर्वत्र इसकी शाखाएँ खुल गई। एक शाखा भारत में भी खुली।

यह संस्था जिन लोगों को बच्चे देना स्वीकार करती है उनका नाम एक रजिस्टर में लिख लिया जाता है। उनका घर देख लिया जाता है और उनसे बात-चीत करके यह निश्चय कर लिया जाता है कि वे बच्चे के पालन-पोषण में किसी प्रकार की भी त्रुटि न करेंगे।

जो बच्चे इस संस्था में लिये जाते हैं उनके वास्ते एक अलहदा रजिस्टर होता है। जिसमें बच्चे की आयु, स्वास्थ्य, माता-पिता का स्वास्थ्य और उनका नैतिक जीवन इत्यादि दर्ज होता है। पहले बच्चा केवल एक महीने के वास्ते लिया जाता है। यह उसकी एक

प्रकार की परीक्षा का समय होता है। इसमें उत्तीर्ण होते ही वह सदैव के लिये ले लिया जाता है और उसके सम्बन्ध में पक्की लिखा-पढ़ी हो जाती है। जो बच्चों को गोद लेते हैं उनके साथ भी कुछ नियमों को लेकर इसी प्रकार की लिखा-पढ़ी हो जाती है। यह लिखा-पढ़ी बच्चा और गोद लेनेवाला, दोनों के लिये हितकर होती है।

जो लोग बच्चों को गोद लेते हैं उन्हें किसी प्रकार की सहायता नहीं दी जाती। और न उनसे आग्रह ही किया जाता है। वे अपने ही प्रेम के कारण ऐसा करते हैं। गरीब आदमियों को या ऐसे आदमियों को जो उनका उचित पालन पोषण न कर सकें बच्चे नहीं दिये जाते।

बच्चों के चुनाव में जितना ध्यान दिया जाता है उतना ही ध्यान उनके पालन पोषण की निगरानी में भी दिया जाता है। बच्चे किसी भी अँग्रेज कुटुम्ब से लिये जा सकते हैं किन्तु अधिक संख्या में काम काजी लोगों के ही बच्चे आते हैं। उनमें से अधिकांश मातृ-हीन, पितृ-हीन अथवा दोनों से रहित होते हैं। उन माताओं से बच्चे नहीं लिये जाते जो उनका पालन पोषण कर सकती हैं पर जो कुछ कठिनाइयों के कारण नहीं करना चाहतीं। उनकी कठिनाइयों के दूर करने का यथाशक्ति उद्योग होता है अर्थात् उनको उनके अनुकूल काम या नौकरी तलाश दी जाती है जिससे वे बच्चे को लेकर रह सकें।

७५ सैकड़ा लोगों को लड़के ही गोद लेने पड़ते हैं इसका

कारण यही है कि लोग लड़कियों को इस संस्था में अधिक नहीं देना चाहते क्योंकि उनका पढ़ाना लिखाना उतना कठिन नहीं होता जितना लड़कों का। और यह भी हो सकता है कि गत महायुद्ध में पुरुषों की जो क्षति हुई है उसकी शीघ्र पूर्ति हो।

इस संस्था के होस्टल में बड़ी योग्य महिलाएँ नियुक्त की जाती हैं। घरेलू काम अधिकतर युवती माताओं के हाथ में रहता है जो अपने बच्चों को भी अपने साथ रख सकती हैं। एक छोटी सी कचहरी भी है जो प्रति सप्ताह बैठती है और छोटे-मोटे मामले मुकदमों की जाँच करती है। एक औषधालय भी है जो बच्चों के स्वास्थ्य पर निगरानी रखता है। अभी तक इसमें १००० बच्चे लिये जा चुके हैं जिनमें केवल २ की मृत्यु हुई है। इसी से बच्चों के स्वास्थ्य का अन्दाज़ा किया जा सकता है।

इस संस्था को हज़ारों लोग बच्चे देने को तैयार हैं। पर स्थानाभाव के कारण अधिकांश बच्चे नहीं लिये जाते। इसके लिये और बहुत से गृहों की व्यवस्था की जा रही है। कुछ लड़के ऐसे भी होते हैं जो केवल शिक्षा पाने के समय तक के लिये लिए जाते हैं। हिंदुस्तान के जो अंग्रेज अफसर बच्चे गोद लेते हैं, उनकी सूची लार्ड लिटन के पास रहती है। इसी प्रकार समस्त बृटिश राज्य में यह प्रबन्ध है।

जुड़वाँ बच्चों का पालन पोषण एक साथ ही होता है। एक बार एक महिला तीन बच्चे एक साथ पैदा होने से मर गई। गृह में पाँच बच्चे और होने के कारण पिता उनकी सँभाल करने में

लाचार हो गया अतएव उसने इन तीनों नवजात शिशुओं को इसी संस्था के सुपुर्द कर दिया। अब वे एक बहुत अच्छे कुल में रख दिये गये हैं और बड़े सुन्दर बच्चे हैं।

गोद लेने वाले इस संस्था को प्रायः गोद लिये बच्चों के विषय में लिखा करते हैं। नमूने के तौर पर दो एक चिट्ठियाँ देते हैं:—

"मैंने मार्च में जो कन्या आपकी संस्था से गोद ली है वह बड़ी तन्दुरुस्त है और दिनों दिन बड़ी सुन्दर और प्यारी मालूम होती है। मेरे दिल में आता है कि उसकी एक फोटो आपके पास भी भेजदूँ। अब हम उसके बिना जीवन के सुखों को अनुभव ही नहीं कर सकते।"

एक दूसरी चिट्ठी देखिये—

"हम नन्हीं 'ज्वाय' को सदैव रखने के लिये निश्चय कर चुके हैं। क्योंकि अब उसके बिना हमारा जीवन व्यर्थ है। उसने हमारे दिलों में घर कर लिया है। सम्पूर्ण कुटुम्ब की वह जान हो रही है। मानों वह एक छोटी सी परी है जो स्वर्ग से हमारे घर में टपक पड़ी है।"

इसी प्रकार सैकड़ों चिट्ठियाँ आया करती हैं। जिनको ईश्वर ने बच्चे नहीं दिये उन्हें यह संस्था बच्चे देकर आनन्दित कर रही है, जिन्हें ईश्वर ने बच्चे दिये हैं पर जो उनको उचित पालन पोषण नहीं कर सकते वे इस संस्था के कारण अपने बच्चों की तरफ से निश्चिन्त हो जाते हैं। स्त्रियों का इस संस्था से जो विशेष सम्बन्ध

है वह स्वाभाविक ही है क्योंकि स्त्री जाति कितनी ही उन्नति क्यों न कर जाय, उसके हृदय से बच्चों का प्यार नहीं जा सकता।

क्या अच्छा हो यदि भारत की महिलाएँ भी ऐसी ही संस्थाएँ बनाने की बात सीखें। भारत में इसकी परम आवश्यकता भी है। देखें ईश्वर यह दिन कब दिखाता है।

परदे पर एक नज़र

आधुनिक भारतीय महिलाओं में परदे का प्यार स्वाभाविक है। जो स्त्री जितना ही छिप कर रहती है उसकी उतनी ही प्रतिष्ठा है। ऐसी भी कितनी स्त्रियाँ है जो पर्दे को घृणित और स्त्री-समाज का घातक बताती हैं, फिर भी उनके हृदय से परदे का प्यार नहीं जाता। ऐसे पुरुषों की भी संख्या कम नहीं है जो स्त्रियों को पर्दे में ही रखने के पक्षपाती हैं। इन्हीं सब कारणों से शिक्षित समाज के घोर परिश्रम करने पर भी पर्दा न उठा।

इतिहास इस बात का प्रमाण है कि भारत में पहिले पर्दा नहीं था। यह विचित्र वस्तु हमको मुसलमानों ने दी और हमने सहर्ष स्वीकार कर ली। हमारी तो यही नीति है कि—'प्रेम सहित मरिबो भलो जो विष देय बुलाय' किन्तु मुसलमानों ने हमको यह वस्तु प्रेम-पूर्वक नहीं दी। वे उस समय हमारे ख़ून के प्यासे थे। हमारा कर्त्तव्य था कि हम उनकी प्यास बुझाते न कि सामने से भागते और उनसे पर्दे का दान लेते। यह बुज़दिली थी जो हम को आज भी उठने नहीं देती।

मुसलमानों के भय से ही हमारी देवियों ने परदे की शरण ली—यह बात हम मानने के लिये तैयार नहीं हैं। हमारी जान पर खेलने वाली बहिनें किसी से क्यों डरने लगीं। जो स्त्री स्वधर्म

की रक्षा के लिये जीवित अग्नि में प्रवेश कर सकती है। उसे छिपाने की क्या आवश्यकता ? यदि थोड़ी देर के लिये यही कारण मान लिया जाय तो पुरुषों को भी पर्देनशीन होना चाहिये था। क्योंकि हम उस समय मुसलमानों के स्पर्श मात्र से भी पतित हो जाते थे। यदि कोई मुसलमान हमको छू ले या हमारे ऊपर थूक दे तो हम जाति च्युत हो जायँगे। हमारी ऐसी धारणा हो गई थी। अब भी हम मुसलमानों के साथ भोजन इत्यादि नहीं कर सकते। क्योंकि ऐसा करते ही हम जाति से पृथक कर दिये जायँगे। इन बातों को सोचते हुये पुरुषों को भी अपनी रक्षा का उपाय सोचना चाहिये था। उन्होंने क्या उपाय सोचा ? परदे की ओट क्यों न चले गये ? जिस प्रकार स्त्रियाँ नष्ट हो सकती थीं उसी प्रकार पुरुष भी नष्ट हो सकते थे। फिर स्त्रियों को ही परदे में क्यों रक्खा। क्या वे पुरुषों से कम साहसी थीं ?—कदापि नहीं।

पर्दा हममें मुसलमानों के भय से नहीं आया। हमने उनका अनुकरण किया है। जिस प्रकार आज कल हमारी पढ़ी लिखी बहिनें पश्चिमीय सांचे में ढल रही हैं। उसी प्रकार उस समय में भी मुसलमानों का शासन स्थापित हो जाने पर हमारी देवियों ने मुसलमान स्त्रियों का अनुकरण किया। पंजाब और सरहद्दी सूबे की हिन्दू महिलाओं पर तो इस का असर इतना पड़ा कि वे मुसलमान स्त्रियों की भांति पाजामे तक पहिनने लगीं और बोरका भी ओढ़ने लगीं।

पति और पत्नी में प्रेम की कमी का कारण यदि युक्ति-पूर्वक

देखा जाय तो इसके सिवाय और कुछ नहीं है। विवाह होने से पूर्व पति अपनी स्त्री को देख तक नहीं पाता। सब मनुष्य के स्वभाव एक से नहीं होते। स्वभाव की जहाँ भिन्नता है वहाँ प्रेम का पौदा लगाना ऐसा ही है जैसा ऊसर में धान की खेती करना। लड़की के माता पिता भी अपनी कन्या के गुण स्वभाव, रूप इत्यादि की ओर ध्यान न दे उसके लिये कुबेर के समान धनी, बृहस्पति के समान विद्वान, भीम के समान बली और कामदेव के समान सुन्दर इत्यादि सर्व गुण सम्पन्न बर ढूँढने चलते हैं। लड़की की प्रशंसा में कह देते हैं कि ऐसी सुन्दर है जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा, ऐसी विद्वान् है जैसे सरस्वती इत्यादि। इस प्रकार प्राणि-ग्रहण की क्रिया समाप्त होती है। विवाह के पश्चात् जब पति पत्नी आपस में मिलते हैं तब एक को दूसरे का यथार्थ ज्ञान होता है। "पीछे ज्यों मधु मक्षिका हाथ मले पछताय" की भांति वे मन मसोस कर रह जाते हैं। इधर जब से लोग समझने लगे हैं कहीं २ कन्या की फोटो इत्यादि देख कर शादी करते हैं। किन्तु फोटो से सिवाय रूप के और किसी बात का पता नहीं चलता। अभी हाल की बात है मैं एक बारात में गया था। संयोग-वश विवाह भी देखने का मुझे अवसर पड़ा। कन्या कपड़े में इस प्रकार लिपटी थी कि उसकी पैर की अङ्गुलियाँ तक हम न देख सके। परदे का यहाँ इतना कठिन शासन था कि लड़की की माता तक विवाह मण्डप में न आई। एक तागे द्वारा पति के साथ उसकी गाँठ बँधी थी। जब बर और बधू एक साथ खड़े हुए तो बधू वर से एक बालिस्त

बड़ी दिखलाई पड़ी। फिर भी बगल में खड़ी एक स्त्री (नायन) ने उसे इतना झुका दिया कि वह वर के बराबर मालूम हो। यह विवाह लड़की के पिता ने बर को धनी मनुष्य का लड़का तथा उच्च कुल का ही समझ कर किया है। लड़के का पिता भी सन्तुष्ट है क्योंकि उसे दहेज काफी मिला है वे दोनों अबोध भी इससे हृदय से सहमत होंगे या नहीं यही प्रश्न है।

इस प्रकार स्वरुचि अनुसार जीव की चिरसंगिनी न पाकर पुरुष का लोलुप हृदय तृषित भ्रमर की भांति इधर उधर भटकता है और स्वयं को तथा उस असहाया को जिसका उसी पर भार है सदा के लिये दुःखी बना लेता है। स्त्री के भावों में भी सदैव पवित्रता नहीं रहती। कलुषित विचार अवसर पाकर उठते ही हैं और कभी कभी व्यवहारिक साँचे में ढल भी जाते हैं। इस प्रकार कवियों के परकीया नायका की सृष्टि होती है जिसका होना समाज के लिये उतना ही हानिकारक है जितना वेश्या का।

बहुत से लोगों का अनुमान है कि आजकल हमारा पुरुष समाज कलुषित है। उसके कुटिल कटाक्षों से स्त्रियों का बचना बिना पर्दे के सम्भव नहीं। ऐसे लोगों से हमारा कहना है कि पुरुष समाज ही क्यों कलुषित हैं ? स्त्री समाज भी तो इसी प्रकार कलुषित कहा जा सकता है। क्योंकि यदि स्त्री समाज, शुद्ध होता उसमें पवित्रता की धार बहती होती तो पुरुषों पर गंदे छींटे कहाँ से पड़ते। पर्दा स्त्रियों को शुद्ध नहीं रख सकता। किसी ने कहा भी है—

घूँघट की सौ ओट करो पर,
चञ्चल नैन छिपैं न छिपाए।

जो सच्ची स्त्री है। जिसके हृदय में यथार्थ लज्जा है जिसको अपने कुल की मर्यादा का ध्यान है वह चाहे जहाँ रहे उसका कोई कुछ नहीं कर सकता। उसके विरुद्ध व्यभिचारिणी और दुश्चरित्रा लाख परदे में बन्द रहने पर भी शुद्ध नहीं रह सकती। ऐसी ही स्त्रियों ने सम्पूर्ण स्त्री-समाज को बदनाम कर रक्खा है।

किसी कवि ने तो यहाँ तक कह डाला है कि—

"पुस्तकी लेखनी दारा पर हस्ते गता गता"

ऐसा न होना चाहिये। विश्वास भी कोई वस्तु है। पुरुषों को स्त्रियों पर भरोसा रखना चाहिये। यदि आप ऐसा नहीं कर सकते तो उनका साथ छोड़िये। पर्दे से स्त्री-समाज की उन्नति में बड़ी विकट बाधा पड़ रही है। खाना पीना बच्चे पैदा करना और मर जाना केवल इसीलिये वे संसार में नहीं आँई। ईश्वर ने उनको भी नाक कान आँख मस्तिष्क इत्यादि पुरुषों की भांति ही दिये हैं। इसी से पता चलता है कि वाह्य प्रकृति के साथ उनका भी घना सम्बन्ध है। अन्त में मैं अपनी बहिनों से प्रार्थना करता हूँ कि अब भी इस प्रथा के मिटाने के लिये तैयार हो जाना चाहिये। बिना पर्दे की प्रथा टूटे महिला-समाज की उन्नति नहीं हो सकती। पुरुष कभी आपको पर्दा छोड़ने से रोक नहीं सकते और यदि रोकें तो आप सत्याग्रह कर सकती हैं जिसके सामने संसार की कोई भी शक्ति नहीं टिक सकती।

लज्जा

जिसको देखो वही कहता है कि लज्जा ही स्त्रियों का भूषण है। स्त्रियों ने भी बिना सोचे समझे ही लज्जा का ढोल पीटना आरम्भ कर दिया। घूँघट देव ने अपना चमत्कार दिखाया और पर्दा स्त्री क्या पुरुष सब के हृदयों पर पड़ गया। लज्जा का यथार्थ अर्थ न समझने के कारण ही यह सब हो गया। इससे देश तथा समाज को कितनी क्षति पहुँची और पहुँच रही है कदाचित इसके लिखने की आवश्यकता नहीं रही।

इन "त्रपाङ्गनाया भूषणम्" के अनुयायियों ने यह न सोचा कि लज्जा स्त्रियों का ही भूषण क्यों है। पुरुष को क्यों निर्लज्ज हो जाना चाहिये। कौन ऐसा पुरुष है जिसके हृदय पर लज्जा का अधिकार नहीं है। मुँह खुला रहने से ही वह निर्लज्ज नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार मुँह छिपाकर रहने से ही स्त्रियाँ लज्जावती नहीं हो सकतीं। जिसमें यथार्थ लज्जा नहीं है वह पशुओं से भी गिरा है क्योंकि पशुओं में तो कहीं कहीं लज्जा पाई भी जाती है।

अब देखना यह है कि लज्जा कहते किसको हैं। भारत को छोड़कर शायद ही कोई देश ऐसा हो जहाँ की स्त्रियाँ परदे में रहती हैं। क्या वे सब निर्लज्ज हैं ? दूर क्यों जाइये। अपने ही यहाँ की प्राचीन सभ्यता पर ज़रा गौर कीजिये। उस समय स्त्रियाँ यहाँ चहार दिवारी के अन्दर बन्द नहीं रहा करती थीं। उनको भीतर बाहर प्रायः सभी ठौर काम करना पड़ता था। सीता, राम के साथ देश विदेश सर्वत्र जाती रहीं। दमयन्ती नल के साथ मारी मारी फिरीं और अन्त में उन्हें अकेले ही कुछ काल तक दूर देश में जीवन निर्वाह करना पड़ा। क्या कोई कह सकता है कि ये देवियाँ लज्जावती नहीं थीं ? यदि इन्हीं प्राचीन देवियों का अनुकरण किया जाय तो क्या हानि है। सत्य धर्म की रक्षा पर्दे से नहीं हो सकती। परदेनशीन स्त्रियाँ ही अधिकतर दुश्चरित्रा पाई जाती हैं। धर्म की रक्षा केवल आत्मबल और आत्मसंयम से हो सकती है। इन्हीं दोनों वस्तुओं को बेदाग बचाये रखने का नाम लज्जा है।

आज कल लोग स्त्रियों का विश्वास नहीं करते। अधिकांश लोगों का कहना है कि स्त्रियाँ दूसरों के घर जाने से बिगड़ जाती हैं। बिगड़ना और बनना तो सृष्टि का नियम ही है। पुरुष क्या नहीं बिगड़ते ? फिर स्त्रियों पर ही क्यों बिगड़ने का दोष लगाया जाता है। पुरुष चाहे जहाँ रहे, सदा दुराचार ही में क्यों न प्रवृत्त रहे, वह नहीं बिगड़ेगा। उसके लिये बिगाड़ की सम्भावना ही नहीं की जा सकती। किन्तु स्त्रियाँ कैसी ही सुचरित्रा क्यों न हों

पग पग पर उनके लिये बिगड़ जाने का भय लगा हुआ है। बस इसी बनाव और बिगाड़ के मसले को ठीक ठीक हल न कर सकने के कारण लोगों ने स्त्रियों को परदे में बन्द कर दिया और उनकी इस अवस्था का नाम रख दिया लज्जा। वाह! क्या खूब लज्जा का अर्थ लगाया है। बुड्ढी स्त्री परदे में रहे चाहे नहीं। वह माता हो जाती है। चाहे जिसके घर जाय वह नहीं बिगड़ेगी। अब इसमें वह बिगड़ने वाला पदार्थ नहीं रहा। यह बिगड़ने वाला पदार्थ है क्या? लड़कियों पर शुबहा नहीं किया जाता। बुड्ढी स्त्रियाँ सर्वदा शुद्ध ही समझी जाती हैं। अतः यह पदार्थ केवल युवा स्त्रियों में ही हो सकता है। पाठक गण कहेंगे यह यौवन है क्योंकि यौवन के सांचे में ढलते ही स्त्रियों पर से विश्वास उठ जाता है किन्तु नहीं यह यौवन नहीं है। युवा पुरुषों पर क्यों ऐसा दोष नहीं लगाया जाता। अगर यौवन ही इस नवीन बिगाड़ का कारण है तब तो पुरुषों को भी जब तक कि वे वृद्ध न हो जायँ परदे में बैठ कर शुद्धता प्राप्त करनी चाहिये। यह है पुरुषों की काम-वासना और उनमें एक पत्नी-व्रत की कमी। यदि पुरुष एकपत्नी-व्रत हों तो इन स्त्रियों को बिगाड़े कौन? शरद और कीचड़ से सम्बन्ध ही क्या? कारण यही है। इसकी ओर कोई नहीं देखता कार्य ही को सब बन्द करना चाहते हैं। किन्तु क्या बिना कारण को दूर किये कार्य्य बन्द किया जा सकता है?

लज्जा स्त्रियों की शोभा है, पर घूँघट उस शोभा को छिपा लेता है। ऐसी शोभा किस काम की जो देखने में आवे ही नहीं।

लज्जा आँखों में क्रीड़ा करती है। वहीं से मुख मंडल पर होती हुई सम्पूर्ण शरीर में दौड़ लगाती है। मृदुल हास्य के साथ हँसती है और मनोहर वाणी के साथ अलापती है। इस प्रकार यह दर्शक गणों का चित्त आकर्षित करती है। जो इसका भक्त है उसे प्रफुल्लित बनाये रहती है किन्तु जो काम-वासना से प्रेरित हो इसको अनधिकार बिगाड़ने की चेष्टा करता है उसके लिए यह आग हो जाती है। ऐसे अवसरों पर ही लज्जा अपना पूर्ण परिचय देने में समर्थ होती है। यहां यह आत्म-त्याग या कहिये बलिदान का रूप धारण करती है और सतीत्व की रक्षा आप ही आप हो जाती है। इसी अपूर्व गुण से स्त्रियों की शोभा है और यही यथार्थ में लज्जा कहलाने योग्य है।

विधवा किसे कहते हैं ?

लोग कहते हैं—जिसका पति न हो, अथवा जीवित न हो वही विधवा है। पर मेरी समझ में यह बात नहीं आती। मैं तो जिसका पति न हो, अथवा जीवित न हो उसे कुमारी अर्थात् अविवाहिता कहूँगा। उसी का पति नहीं होता। विवाह हो जाने के पश्चात् कोई स्त्री ऐसी नहीं है जिस का पति न हो—यह दूसरी बात है कि वह उसके पास न हो। हमारे शास्त्रों के अनुसार स्त्री पुरुष का सम्बन्ध इसी लोक तक परिमित नहीं है। क्योंकि यदि ऐसा होता तो आज करोड़ों विधवाओं के करुण क्रन्दन से आकाश न कराहता होता। एक पति के प्राण पखेरु उड़ते ही दूसरा पति मिल जाता। विधवा स्त्रियों के पुनर्विवाह न होने का कारण यही है कि इस लोक का बिछुड़ा पति परलोक में सहज ही प्राप्त होता है। फिर जब परलोक में पति के मिलजाने की सम्भावना है तो यह कैसे कहा जा सकता है कि स्त्री का पति ही नहीं है, वह है अवश्य, यहां न सही दूसरे लोक में तो है। दूसरा

लोक कोई वस्तु नहीं है यह मान लेने पर भी पति न होना स्वीकार नहीं किया जा सकता। वह है अवश्य आँखों के सामने भले ही न हो। वह सूक्ष्म रूप से वायु मण्डल में व्याप्त है। उसकी साँस हवा में मिल कर उस वियोगिनी विधवा के हृदय में प्रवेश करती है। उसकी आँखों की ज्योति रविकिरणों के साथ मिलकर सम्पूर्ण भू-मण्डल को देख रही है। तात्पर्य्य यह कि उसके शरीर के सारे अवयव किसी न किसी रूप में विद्यमान है। पाँचों तत्व में उसके शरीर के सारे तत्व मिलकर अनन्त आनन्द में लीन हो गये हैं। जिस जल को वह विधवा पीती है उसमें, जिस वायु में वह साँस लेती है उसमें, जिस प्रकाश में वह देखती है उसमें, जिस भूमि पर वह विचरण करती है उसमें, सर्वत्र उसका पति विद्यमान है। और वह स्त्री भी इस मानव शरीर को तजते ही उसी भाँति सर्वानन्द में लीन होकर अपने प्यारे पति को प्राप्त कर लेगी। फिर वह विधवा कैसे ? वह तो सदा सुहागिन है। हाँ उसे चिर विरहिणी कह सकते हैं। मेरी समझ में इसी प्रकार की चिर-विरहिणी का दूसरा नाम विधवा है। पति जीवित नहीं है इस विषय को विस्तार देने की आवश्यकता नहीं समझता क्योंकि हमारे देश में कदाचित ही कोई ऐसा हो जिसे जीवात्मा के अमर होने में विश्वास न हो।

विधवा और वियोगिनी में केवल इतना ही अन्तर है कि वियोगिनी इसी शरीर से बिछुड़े पति को प्राप्त कर सकती है और विधवा नहीं। पति मर जाता है तभी स्त्री विधवा होती है यह भी

मैं स्वीकार नहीं कर सकती। यदि पति की जीवितावस्था में स्त्री को वैधव्य-वेदना सहनी पड़े तो लोग कहें या नहीं—वह किसी विधवा से कम नहीं है। इस प्रकार यदि गौर करके देखा जाय तो पता चलेगा कि हमारे देश में एक ही नहीं चार प्रकार की अर्थात्, 'आश,' 'पास,' 'निराश' और 'नाश' विधवाएँ हैं। इन चारों का यहाँ थोड़ा उल्लेख कर देना अनुचित न होगा।

'आश' विधवाएँ वे हैं जिनको पति से केवल आशा ही आशा है। वह जान बूझ कर उनसे दूर रहता है। कभी कभी उनको प्यार भी नहीं करता और अन्य स्त्रियों के प्रेम जाल में फँसा रहता है इत्यादि। ऐसी ही खिन्न वदना सुकुमारियों को भावुक कवियों ने प्रोषित-पतिका, खण्डिता, उत्कंठिता, और वासक-शय्या इत्यादि नामों से अलंकृत कर उनकी दर्द भरी आहों को समाज के सामने रखने का उद्योग किया है।

'पास' विधवाएँ ये हैं जिनके पति उनसे दूर नहीं हैं। सदैव उनके पास रहते हैं और उन्हें जी जान से प्यार भी करते हैं किन्तु पुरुषत्व न होने के कारण उनको दाम्पत्य प्रेम से सन्तुष्ट नहीं कर सकते। वे लोग जो बुढ़ाई अवस्था में शिथिल शरीर होते हुए भी विवाह करते हैं—इसी प्रकार की विधवाओं की सृष्टि करते हैं। आज कल ऐसी विधवाओं की संख्या बहुत बढ़ रही है। बाल विवाह, बालकों में कुरुचि उत्पन्न होकर ब्रह्मचर्य्य का नाश तथा वृद्ध विवाह इत्यादि बातें इस में पूर्ण योग दे रही हैं।

'निराश' विधवाएँ वे हैं जिनको इस जीवन में पति का

दर्शन दुर्लभ है। फिर भी स्वर्ग में पतिमिलन की लालसा से वे अपना जीवन पवित्रता के साथ व्यतीत कर रही हैं। इनके विषय में ऊपर बहुत कुछ कहा जा चुका है।

'नाश' विधवाएँ वे निराश विधवाएँ है जो यौवन के मद में आकर अपने स्वर्गीय पति को भुला बैठती हैं और गन्दे विचारों अथवा छिपे व्यभिचारों में लीन रहती हैं। आज कल इनकी संख्या हमारे देश में सब से अधिक है मुझे तो यहाँ तक भी कहने में संकोच न होगा कि ९९ फी सदी यही हैं। क्या इससे भी कोई भयानक स्थिति उपस्थित हो सकती है। आज कल जो कतिपय समाज सुधारक विधवा-विवाह पर बड़ा ज़ोर दे रहे हैं उसका यही मुख्य कारण है। यह भयानक-स्थिति किसी से छिपी नहीं है। दिन दहाड़े भ्रूण हत्यायें हो रही हैं। वेश्याओं की वृद्धि हो रही है। चमारों के साथ ब्राह्मणों की बेटियाँ भगी जा रही हैं। सब का यही कारण है। विधवा विवाह के विरोधियों को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिये।

आज कल हमारे देश में जितनी विधवाएँ हैं—सबों को पति प्रेम में मग्न चिर-विरहिणी नहीं कह सकते। इस बात को और खुलासा करने के लिये पति की परिभाषा स्थिर कर लेना परम आवश्यक है। माता पिता अपनी अबोध बालिका को जिस पुरुष के साथ बिना उसकी पूर्ण जानकारी और राय के विबाह देते हैं वह पति तभी हो सकता है जब वह उस बालिका का पूर्ण प्रेम प्राप्त कर ले। किन्तु ऐसे बहुत कम पुरुष देखे गये हैं। स्त्री

के बाह्य शरीर का पालन पोषण और उस पर शासन करने वाला मनुष्य पति नहीं हो सकता, यथार्थ पति बनने के लिये उसे स्त्री के आन्तरिक हृदय पर भी शासन करना परम आवश्यक है। जिस पति का स्त्री के हृदय पर अधिकार नहीं है वह पति नहीं है और न ऐसे पुरुष की स्त्री पत्नी ही कहला सकती है। ऐसी स्त्री को कुमारी अर्थात् अविवाहिता कहना अनुचित नहीं है। विवाह-संस्कार गुड़ियों का खेल नहीं है कि स्त्री-पुरुष को वेदी की चारों ओर घुमा दिया और हो गया। विवाह संस्कार के पश्चात बाह्य सम्मेलन के साथ ही साथ आन्तिरिक मेल भी होना चाहिये। दो शरीरों के परस्परालिङ्गन का समय उपस्थित होने के पहिले दोनों के हृदयों को मिला कर एक कर देना ही आदर्श विवाह है। इसके विरुद्ध जितने भी स्त्री पुरुष के जोड़े इकट्ठे होते हैं वे धार्मिक नहीं कहला सकते। और न ऐसे पति के न होने से स्त्री विधवा ही कहलानी चाहिये। क्योंकि विधवा तो वह तब होती जब उसका पति के साथ शारीरिक विवाह के साथ ही साथ मानसिक विवाह भी हुआ होता। ऐसी स्त्रियों को एक प्रकार से अविवाहिता समझना और उनको पुनर्विवाह का पूर्ण अधिकार देना अनुचित नहीं है। गत वर्ष पौष मास की 'गृहलक्ष्मी' में 'कुमारी' कमला' का 'विधवा-विवाह' शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ था। उसमें उन्होंने यह दर्शाने का उद्योग किया था कि विधवाओं का कदापि पुनर्विवाह न होना चाहिये। उक्त देवी जी ने आदर्श तो खड़ा कर दिया पर व्यवहारिकता की ओर किञ्चित भी ध्यान न दिया।

आप को इस विषय पर ज़ोर देने के पहिले पति, पत्नी, विवाह और विधवा इत्यादि का यथार्थ अर्थ समझ लेना चाहिये था। मैं 'कुमारी कमला देवी' से इस विषय पर पुनः विचार करके अपना मत स्थिर करने की प्रार्थना करता हूँ। दूध पीती बच्चियों को अबोध अवस्था में ही विधवा बनाकर उनसे पूर्ण पवित्रता की आशा रखना व्यर्थ है। यौवन की मादकता में भी धर्म की सुनाई हो सकती है पर जब धर्म का ही बोध न हो तो क्या किया जाय ? जिसने पति को इसी लोक में नहीं पहचान पाया वह उसे परलोक में कैसे खोज सकती है ? वह विधवा नहीं है। उसे सधवा बनाने का यत्न करना चाहिये।

सौतेली माँ

यदि किसी बालिका का पूर्वजन्म के दुष्कर्मों या शुभ कर्मों के फल से, या विधाता की कृपा अथवा नाराजी से सौतेली माँ बनने का दुर्भाग्य या सौभाग्य प्राप्त हुआ तो उसके लिए यह कह देना कि वह निष्ठुर-हृदया है, एक साधारण सी बात है। वह अपने पिता के घर में दया की मूर्ति ही क्यों न बनी रही हो; ससुराल पहुँचते ही पत्थर की प्रतिमा से भी कठोर समझी जाने लगती है। क्या स्त्री क्या पुरुष सभी उसको बिना किसी सबूत के ऐसा ही समझ लेते हैं। अपनी सौत के बच्चों को वह कितना ही प्यार क्यों न करे, उनके लिये अपना कलेजा ही क्यों न काट कर रख दे, उक्त कलङ्क से बचना उसके लिए अनिवार्य है।

हमारी समाज में ईश्वर की कृपा या कोप के कारण सौतेले बाप नहीं होते। यदि ऐसा होता तो कदाचित् पुरुष भी इस असह्य कलङ्क से न बचते और उस अवस्था में पुरुषों का भी एक ऐसा ही समुदाय होता जो सौतेली माताओं की भाँति वज्र हृदय समझा जाता। सम्भव है तब पुरुष अपने ऊपर की गयी इस कलङ्क-कालिमा को धोने का यत्न करते और इस असह्य अपमान का ज़हर हमारी नासमझ बाल बधुओं पर भी इतना अधिक न चढ़ता। यूरोप इत्यादि पश्चिमीय देशों की सभ्य

समाजों में सौतेली माताओं या सौतेले पिताओं की कमी नहीं है; पर वे इतने अधिक दोषी नहीं ठहराये जाते। वहाँ कोई कोई सौतेले माता या पिता तो ऐसे भी पाये जाते हैं कि जिनके प्रगाढ़ प्रेम में बच्चा अपने मृतक माता या पिता की स्मृति तक भुला देता है।

इसका यह कारण नहीं है कि वहाँ के लोग शिक्षित हैं और हमारे यहाँ के मूर्ख क्योंकि हमारे यहाँ के पढ़े लिखे लोग भी इस प्रकार के दोषों से बचे नहीं हैं। असल बात यह है कि यहाँ के वे लोग जिनकी स्त्रियाँ कुछ बच्चे छोड़कर मर जाती हैं—अपना पुनर्विवाह इस उद्देश्य से नहीं करते कि उस मृतक माता के कलेजे के टुकड़ों का जिनको वह मृत्यु के पंजे में फँस जाने के कारण विवश होकर अध खिला ही छोड़ गई हैं—उचित रीति से पालन पोषण हो सके। हाँ पुनर्विवाहार्थी मनुष्य कहते यही हैं कि यदि हम अपना दूसरा विवाह न करेंगे तो हमारे ये फूल से भी कोमल बच्चे जो स्वप्न में भी अपनी प्यारी माता की गोद से पृथक नहीं हुए हैं—बे माता के हो जायँगे और उनकी देख भाल कौन करेगा? कौन उनके आँसू पोंछेगा और कौन इनके कीचड़? इत्यादि।

यदि यही बात है, पत्नी का और उसके बच्चों का हृदय में यथार्थ प्रेम है तो कोई भी पुरुष प्रिय पत्नी की स्मृति तथा उसके प्रति रूप अपनी सन्तान को सामने रखते हुए—अपना दूसरा विवाह नहीं कर सकता। रही बात बच्चों के पालन पोषण की—

उसके लिये यह मानते हुए कि सौतेली माँ बच्चों को कदापि प्यार नहीं कर सकती—पुनर्विवाह करना—जान बूझ कर साँप के बिल में हाथ डालना है। बच्चों का पालन पोषण और किसी रीति से भी हो सकता है। संतान पालन में माता और पिता दोनों का सम भाग है। बिना माता के तो संतान की उचित सेवा सुश्रुषा ही नहीं हो सकती पर बिना पिता के वह अनाथ हो जाती है और उसकी दुखिया माता को भी असह्य वैधव्य वेदना सहन करनी पड़ती है। जब स्त्री अपने एक मात्र आधार पति के मर जाने पर निराश्रित हो आर्थिक, मानसिक और सामाजिक—सभी प्रकार के कष्टों का सामना करती हुई भी अपनी सन्तान को पौदे से वृक्ष बना देती है;तो यह सम्भव नहीं कि पुरुष जो पहिले—से ही स्वतंत्र है, किसी का आश्रित नहीं है, आर्थिक तथा सामाजिक कष्टों से बचा है या बच सकता है—संतान का पालन पोषण स्वयं न कर सके।

यदि विचार कर देखा जाय तो बच्चों को सौतेली माँ की अपेक्षा सौतेले बाप की ही आवश्यकता अधिक है। क्योंकि हमारे यहाँ की स्त्रियाँ ऐसी नहीं होतीं जो पति के मर जाने पर जीवन निर्वाह के लिये आवश्यकतानुसार द्रव्योपार्जन कर सकें और बिना आर्थिक सहायता के माता कैसी ही चतुर क्यों न हो संतान का पालन पोषण कर ही नहीं सकती। उसका प्यार बच्चों की भूख नहीं दूर कर सकता, न उनकी प्यास बुझा सकता है और न उनको उचित शिक्षा इत्यादि आवश्यकीय गुणों से ही

विभूषित कर सकता है। पर स्त्रियों को पतिव्रत धर्म का पालन करना पड़ता है। बच्चे दाने बिना पटपटा कर मर क्यों न जायँ, स्त्री अपनी या अपनी संतान की रक्षा के लिये भी पुनर्विवाह नहीं कर सकती। उसको स्वर्ग में या दूसरे जन्म में बिछुड़े पति से पुनः मिलने की लालसा रख—यह दुखमय जीवन यात्रा—किसी प्रकार रो गाकर समाप्त करनी पड़ती है। हमारी समझ में यह बुरा नहीं है और न मैं सन्तानवती विधवाओं के पुनर्विवाह का जब कि यहाँ बाल विधवाओं का ही पुनर्विवाह होना असम्भव है—कोई प्रस्ताव ही पेश करता हूँ। कहने का तात्पर्य्य जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, यही है कि जिस समाज में सौतेले बाप नहीं हो सकते वहाँ सौतेली माताएँ भी न होनी चाहिये थीं।

मैं सौतेली माताओं से चिढ़ता नहीं हूँ और न यह ही मानने के लिये तैयार हूँ कि वे निष्ठुर होती हैं। तब मैं उनका अस्तित्व क्यों नहीं चाहता—उसका भी कारण है—सुनिये— ।

प्रत्येक मनुष्य उसी काम को कर सकता है जिसकी उसे पूर्ण जानकारी हो। जिसने स्वयं वेद नहीं पढ़ा वह दूसरों को क्या पढ़ावेगा। भोली भाली बालिकाएँ जो स्वयं अपनी ही खबर नहीं रख सकतीं वे औरों की देख भाल कैसे कर सकती हैं। जिस लड़की ने दिल खोल कर गुड़ियों को भी नहीं खेलाया वह जीते जागते बच्चों का मन बहलाव तथा उनका पालन पोषण कैसे कर सकती है? जो आज बधू बन कर आई है, लज्जा के मारे जिसकी आँख बन्द हुई जा रही है, जिसे अपनी माँ की गोद तथा अपने

वयस की सखी सहेलियों के सिवाय और किसी से कुछ परिचय नहीं है, जो सोकर उठने पर अपनी आँख भी धोना नहीं जानती उसके सुपुर्द करीब करीब उसी के बराबर दो तीन बच्चे कर देना और उसे उनकी माँ कहना क्या अन्याय नहीं है। उसे माता के कर्त्तव्यों का क्या ज्ञान? वह बच्चों के साथ खेल सकती है, उनसे लड़ झगड़ सकती है, पर उनपर शासन नहीं कर सकती और न उनकी सेवा ही कर सकती है। इसमें उसका दोष भी नहीं है। वह बधू बन कर आई है माता बन कर नहीं। उसे सौतेली माँ कहकर, ताने मारना और सताना कदापि उचित नहीं है। ऐसी बालिका से विवाह कर जो मनुष्य अपनी सन्तान को मातृहीन होने से बचाने का बहाना करता है—यथार्थ में वही निष्ठुर हृदय और दंडनीय है। वह एक साथ ही तीन पाप करता है। प्रथम तो वह अपनी पत्नी की मृत-आत्मा का अपमान करता है, क्योंकि यह मानी हुई बात है कि मरने के पश्चात् भी कोई स्त्री अपनी सौत न चाहेगी। दूसरे वह अपनी माता व मातृभूमि से प्रथक की गई बालिका को—जिसे बधू बनने की अभिलाषा है—बलपूर्वक माता बनाकर उसका अपमान कराता है। तीसरे वह अपनी संतान को एक ऐसे व्यक्ति के हाथ में सौंपता है जिसे संतान पालन का किञ्चित मात्र भी अनुभव नहीं है। किन्तु धन्य है हमारी समाज को! जो ऐसे मनुष्यों को कुछ भी नहीं कहती उल्टा उनकी प्रशंसा करती है।

ऐसे मनुष्य केवल विषय-वासना से प्रेरित होकर ही पुनर्विवाह

करते हैं क्योंकि बच्चों की देख भाल करने के लिए युवा बालिकाओं की अपेक्षा वृद्ध या अधेड़ स्त्रियाँ कहीं अधिक उपयुक्त हैं। पर वृद्ध स्त्रियों के साथ विवाह करने के लिये कोई तैयार नहीं हो सकता। पश्चिमीय देशों में जब स्त्री कुछ बच्चे छोड़ कर मर जाती है तो वहाँ के मनुष्य अपना पुनर्विवाह लड़कियों के साथ नहीं करते। और यदि करना भी चाहें तो वहाँ की लड़कियाँ स्वीकार नहीं कर सकतीं क्योंकि वे इतनी परतंत्र नहीं होतीं कि माँ बाप आँख मूँद कर जिसके साथ चाहें उन्हें विवाह दें। अतएव उन्हें अपने ही या कभी कभी अपने से भी दुगुने उमर तक की स्त्री से विवाह करना पड़ता है। हमारे देश में भी वे मनुष्य जिनकी स्त्रियाँ कुछ बच्चे छोड़कर मर चुकी हैं जब तक बच्चों के पालन पोषण की आड़ ले, अबोध बालिकाओं से विवाह करते रहेंगे और उन्हें कोई रोकेगा नहीं, तब तक सौतेली माँ बनने वाली स्त्रियाँ व्यर्थ के अपवाद से न बच सकेंगी और न उनका गार्हस्थ जीवन ही कभी सुखमय हो सकेगा।

स्त्रियाँ ही अपनी उन्नति की बाधक हैं

यह बात निश्चय हो चुकी है। और बहुत पहिले से थी कि किसी देशके मनुष्य समाज की उन्नति वहां की स्त्रियों पर ही निर्भर है। जितना ही उच्च और भाव पूर्ण स्त्री समाज होगा उतनी ही उसमें नर रत्नों की अधिकता होगी। कदाचित ही संसार में कोई ऐसा हो जो उक्त कथन को न मानता हो। इसी बात को लेकर संसार में बड़ी बड़ी सामाजिक लड़ाइयाँ हुईं और हो रही हैं। हमारा देश भी इस आन्दोलन से बचा नहीं है। यहाँ के भी कुछ लोग स्त्रियों की उन्नति में ही अपनी उन्नति का मार्ग देख रहे हैं और कुछ कमर कस कर अग्रसर होने के लिए उद्यत भी है। किन्तु पग पग पर असफलता उनको आगे बढ़ने से रोकने के लिए कांटें बिछा रही है। इसका कारण क्या है ? इस लेख में मैं इसी विषय पर प्रकाश डालने का यत्न करूँगा।

प्रत्येक समाज की उन्नति पर उसके व्यक्तिओं की आदत का बड़ा असर पड़ता है। जिस स्वभाव के व्यक्तियों की प्रधानता होती है वह भी उसी स्वभाव का हो जाता है। समाज की बाढ़ में चाहे वह जिस तरफ अग्रसर हो सब को बहना पड़ता है। कैसा ही बड़ा पेड़ क्यों न हो उसकी जड़ें कितनी ही गहराई तक क्यों

न गई हों यदि वह किसी नदी के किनारे पर है तो एक न एक दिन उसी नदी की बाढ़ में उसका बह जाना सम्भव है। कितना ही प्रकाशमान दीपक क्यों न हो सूरज निकलने पर उसे अपनी रोशनी सूरज की रोशनी के साथ मिलानी ही पड़ती है। यही प्रकृति का नियम है। यही समाज की उन्नति और पतन का कारण है। जब समाज में अज्ञानियों और अविचारियों की प्रधानता हो जाती है तो ज्ञानी और विचारशील पुरुषों को भी उसकी हाँ में हाँ मिलाना पड़ता है। यही कारण है कि हमारे समाज के चतुर और सच्चे सुधारक भी डर डर कर आगे पैर बढ़ाते हैं।

आज कल हमारा स्त्री-समाज जिन स्त्रियों के हाथ में है वे अत्यंत ही अज्ञान और विचारशून्य हैं। वे अपने आप को भूल गई हैं। वे उन्नति तो चाहती हैं पर अपनी बुरी आदतों को छोड़ने के लिये तैयार नहीं हैं। उदाहरण के लिये पर्दे की प्रथा को लीजिये। पर्दे से बडी बड़ी बुराइयाँ हैं। संसार ने पर्दे को त्याग दिया है। हमारे देश में भी प्राचीन काल में पर्दा नहीं था। इत्यादि बातें सब के ज़बान पर हैं। पर्दे को सब लोग बुरा कहते हैं पर उसे छोड़ने के लिये कोई तैयार नहीं है। ज्यों ज्यों सभ्यता बढ़ती है, पर्दे का प्रचार भी बढ़ता जा रहा है। गावों में उतना पर्दा नहीं है जितना शहरों में। अब ईश्वर की कृपा से हमारे देश में भी कहीं कहीं लड़कियों के स्कूल और कालिज नज़र आने लगे हैं उनमें पश्चिमीय सभ्यता का आभास है। लड़कियों को फ़ैशन और चटक मटक के साथ रहने के लिये उत्साहित किया जाता

है। पर यह सारा काम पर्दे में ही होता है। फ़ाटक पर लिखा रहता है—"मर्दों के आने की सख़्त मुमानियत है।" बाहर ऐसा साइन बोर्ड लगा है और भीतर क्लास में अध्यापिका जी कहती हैं—"पुत्रियो! पर्दा हमारी उन्नति का बाधक है।" पर्दे से बुराई है तो आप जाने बूझ कर क्यों पर्दे में रहती हैं। स्कूल के फाटक पर पुरुषों के बहिष्कार का साइनबोर्ड क्यों लगा है? क्या पुरुष कोई जङ्गली और हिंसक जानवर है जिससे आप इतना घबराती हैं? यदि एक आध पुरुष भूल से आ भी जायगा तो सम्भव नहीं कि वह इतनी लड़कियों और अध्यापिकाओं के होते हुए भी किसी को कोई हानि पहुंचा सके। शरारत करने पर ठोकर मार कर निकाल दिया जा सकता है। जब पढ़ी लिखी स्त्रियों का यह हाल है तो जो अपढ़ हैं उनका दोष ही क्या है? एक अध्यापिकाजी से मेरा परिचय है। वे बी० ए० पास हैं। पर्दे से वे बहुत चिढ़ती हैं। घूंघट काढ़ कर चलने में वे अपना अपमान समझती हैं। पर कभी बाहर नहीं निकलतीं। कहीं जाती भी हैं तो बन्द गाड़ी में। रेल में अकेले सफ़र नहीं कर सकतीं। यह पर्दे का दूसरा रूप है। घूँघट काढ़ कर चलने में उतनी बुराई नहीं है जितनी छिप कर रहने में है।

इसके अतिरिक्त अधिकांश स्त्रियाँ ऐसी ही हैं जो अब तक पर्दा उठाने के खिलाफ़ हैं। उनकी समझ में पुरुष समाज बड़ा पतित है। पर्दे से बाहर होते ही वह उनको बिगाड़ देगा। कुछ पुरुष भी इसी विचार के हैं। किन्तु इन अक्ल के पीछे लट्ठ लेकर

फिरने वालों को अभी तक यह बोध न हुआ कि आत्म विश्वास और आत्मबल भी कोई वस्तु है। जिसमें आत्मबल नहीं है, जो कायर हृदया है, जो धर्म का मूल नहीं जानती, जिसमें कर्त्तव्य पथ पर आरूढ़ रहने की शक्ति नहीं है,—ऐसी स्त्री की रक्षा के लिए यदि पर्दा है तो उसका न होना ही आवश्यक है। ऐसी स्त्रियों का बिगड़ कर नष्ट हो जाना ही अच्छा है क्योंकि उनसे किसी भी अवस्था में समाज को लाभ नहीं पहुँच सकता।

यह तो हुआ पर्दे का पुराण। अब गृहकार्य्य की कहानी सुनिए। रसोई बनाना, बर्तन माँजना, लड़कों का पाखाना साफ करना, इत्यादि विषय गृहकार्य्य के अंग बताए जा रहे हैं। मैं इसके विरुद्ध नहीं हूँ पर सब स्त्रियों के लिए इसी प्रकार का गृहकार्य्य आवश्यक नहीं है। पढ़ी लिखी स्त्रियों पर यह दोष लगाया जाता है कि वे बर्तन माँजने चूल्हा पोतने और रोटी बनाने से दूर भागती हैं। पढ़े लिखे पुरुष भी हल चलाने, घास काटने, और मजदूरी करने से दूर भागते हैं फिर स्त्रियों पर ही यह दोष क्यों? वह स्त्री जो अपनी विद्या कला से इतना रुपया कमा सकती है कि वह घर के छोटे मोटे धन्धों के लिए एक नौकरानी तथा भोजन बनाने के लिए रसोइया रख सकती है—तो क्या आवश्यकता है कि वह भी चूल्हे में सर मारे। इन बातों का दोष केवल उसी स्त्री पर रखना चाहिए जो कुछ भी काम नहीं करती और रसोई इत्यादि बनाने से भी जी चुराती है। जो स्त्री इतनी विद्वान् है कि वह ऐसे ऐसे ग्रन्थ लिख सकती है जिससे समाज बहुत

कुछ लाभ उठा सकती है—उनसे भी रोटी बनवाना कहाँ की बुद्धिमानी है। इसी प्रकार जिन स्त्रियों का समय किसी अच्छे काम में लगा है उनको भोजन इत्यादि बनाने से बरी कर देने में ही भलाई है। सब से बड़ी भूल यह है कि गृहकार्य्य का यथार्थ रूप बहुत कम लोग जानते हैं। गृहकार्य्य को यदि गृहशासन कहें तो अनुचित न होगा। ऐसी व्यवस्था करना कि घर के सब लोग प्रसन्न रहें, वह स्वर्ग सा प्रतीत होने लगे, कोई किसी से असन्तुष्ट न हो इत्यादि गृहशासन कहलाता है। जो स्त्री घर में ऐसी व्यवस्था कर सकती है, वही यथार्थ गृहिणी है। खाना पकाना और वर्तन साफ करना कौन नहीं जानता? यदि ऐसी स्त्री का पति मूर्ख हो और समाज को किसी भी प्रकार का लाभ नहीं पहुँचा सकता हो तो भोजन इत्यादि बनाने का कार्य्य उसी को सौंप देने में कोई बुराई नहीं है। पति देवता तभी हो सकता है जब वह पत्नी को देवी माने। जब वह पत्नी को दासी मानता है तो उसे भी दास बनने से आना कानी न करना चाहिए।

पति की सेवा करना स्त्री का कर्त्तव्य है अपना सर्वस्व उसकी भेंट कर देना अबला का परम धर्म है। उसके प्रेम में लीन हो अपना अस्तित्व तक मिटा देना सती रमणी की परिभाषा है इत्यादि बातों को मैं मानता हूँ, किन्तु कब? जब पति भी यथार्थ पति हो। कर्तव्य शून्य न हो, प्रेम का अवतार हो, पत्नी को पैर की जूती न समझ गले का हार समझे। पति चाहे जैसा हो, अंधा हो, कोढ़ी हो, लँगड़ा हो, क्रोधी हो, अविचारी हो, इत्यादि

सभी अवस्थाओं में उसकी सेवा करनी चाहिए, उसके लिये जान दे देनी चाहिये, किन्तु यदि वह व्यभिचारी हो, पत्नी को प्यार न करता हो, तो उसकी सेवा करना—कमजोरी है। इस दशा में उसको सुधारने का यत्न करना चाहिए। समझाना चाहिये यदि वह किसी प्रकार भी न माने तो उसको त्याग देने में ही भलाई है। जब व्यभिचारिणी स्त्री तुरन्त ठोकर मारकर घर से निकाल दी जाती है तो व्यभिचारी पुरुष भी क्यों न निकाल दिया जाय। व्यभिचार से जब स्त्रियाँ दूषित समझी जाती हैं तो पुरुष पवित्र कैसे रह सकते हैं? जब तक स्त्रियाँ व्यभिचारी पुरुषों की भी सेवा करती रहेंगी उनको त्यागेंगी नहीं तब तक पुरुषों का सुधार हो नहीं सकता। क्योंकि उनको स्वेच्छचारी होकर रहने में किसी भी प्रकार का भय नहीं है। जब उनको यह निश्चय हो जायगा कि जिस प्रकार हम स्त्रियों को ठोकर मार कर निकाल देते हैं उसी प्रकार हमारे दुराचारी होने पर स्त्रियाँ भी हम को छोड़ देंगी, हमारा अपमान करेंगी, तो वे कदापि स्वेच्छचारिता की ओर अग्रसर नहीं हो सकते। पानी वही है जिसको पीने से प्यास बुझे, भोजन वही है जो क्षुधा शान्ति करे। माता वही है जो बच्चे को अपने कलेजे का टुकड़ा मान कर उसका लालन पालन करे, गुरू वही है जो शिक्षा दे। इसी प्रकार पति वही है जो प्यार करे, पालन करे, रक्षा करे, कभी तिरस्कार न करे और जो अपनी लज्जा रखने में सर्वथा समर्थ हो। जिसमें उक्त गुणों में से एक भी गुण नहीं है, जो पालन पोषण नहीं कर सकता,

न सही, पर प्यार भी नहीं करता; वह पति नहीं है और न स्त्री द्वारा पूज्य होने का अधिकारी ही है। यदि स्त्री जान बूझकर ऐसे पति की पूजा करती है तो यह उसकी उदारता है। पर यदि वह विवश होकर उसकी सेवा करती है तो यह—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है—कमज़ोरी है। और जब तक इस कमज़ोरी को मिटा देने के लिए स्त्रियाँ कटिबद्ध न हो जायँगी तब तक स्त्री-समाज की उन्नति के अङ्कुर भी न उगने पायेंगे।

इसके अतिरिक्त बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह इत्यादि बातों में भी स्त्रियाँ ही अधिक भाग लेती हैं। लड़का पैदा हुआ कि उसकी शादी के लिए माँ व्याकुल हो उठती है। दहेज इत्यादि के लिए स्त्रियाँ पुरुषों से कहीं अधिक मचलती हैं। पुरुष केवल इसलिए बदनाम हैं कि वे पर्दे में बैठकर दहेज नहीं माँगते। स्त्री-समाज परतंत्र है; पर व्यक्ति रूप से अधिकांश स्त्रियाँ स्वतंत्र हैं। बहुत कम स्त्रियों के पति ऐसे हैं जो उनके वश में न हों। वे जो चाहें, उनसे करा सकती हैं। यदि माता अपनी लड़की का विवाह बालकपन में न करना चाहे तो पिता कदापि इसका विरोध नहीं कर सकता। विधवाओं की दिनोंदिन वृद्धि होरही है, उनके आँसू सेदेश का दामन तर है। इसके उत्तर दायित्व का भार पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों पर ही अधिक है। आजन्म विधवा रहने से स्त्रियाँ कितने कष्ट भोगती हैं इसका अनुभव पुरुष नहीं कर सकते क्योंकि उनको आजन्म अविवाहित रहने का अवसर ही नहीं आता। विवाह पर विवाह करते चले जाते हैं। मेरा यह मतलब नहीं है कि स्त्रियाँ भी मन

माना विवाह करती जायँ पर यह अवश्य है कि पुरुष भी मनमाना विवाह न करने पायें। माताएँ यह निश्चय करलें कि वे अपनी पुत्री का विवाह किसी ऐसे पुरुष के साथ न करेंगी जिसका बाल्य काल में या कभी विवाह हो चुका है; पर उसकी स्त्री मर गई है— तो कुछ ही दिनों में पुरुषों का भी एक ऐसा गिरोह बन जायगा जिसका जीवन उसी प्रकार अशान्तिमय होगा जैसा विधवा बालिकाओं का। तब जाकर कहीं विधवाओं का करुण क्रन्दन पुरुषों को सुनाई पड़ेगा और सुधार होने में कुछ भी देर न लगेगी।

इसी प्रकार स्त्री-समाज में जितने भी दोष हैं, सब की जननी स्त्रियाँ ही हैं और वे ही उनको दूर भी कर सकती हैं। हमारी बहिने यदि ज़रा भी चाहेंगी तो इसी से बहुत कुछ समझ सकती हैं—

''तातस्य कूपोऽयमितिब्रुवाणा
क्षारं जलं कापुरुषा पिवन्ति''

की भाँति लकीर के फ़कीर बने रहना ठीक नहीं है। सब काल में एक ही नियम लागू नहीं हो सकते। देश और समय को देख कर आचरण करने में ही अपनी भलाई है।

भविष्य की माताओं से

माता बनने के लिये प्रायः सभी स्त्रियाँ लालायित रहती हैं। परन्तु उनमें से अधिकांश यह भी नहीं जानतीं कि ऐसा करके वे 'माता' जैसे परम पवित्र और परम पूज्य शब्द को कितना कलङ्कित करती हैं। प्रत्येक मनुष्य जो इस संसार में आता है, अपने साथ एक ऐसा दिव्य प्रकाश ले आता है जिसके द्वारा समस्त संसार का अन्धकार दूर किया जा सकता है। परन्तु जब मनुष्य गर्भ में पहुँचता है तभी से माता का व्यक्तित्व इस प्रकाश को चारों तरफ़ से मूंद लेता है। यही कारण है कि पैदा होने पर शिशु अपने असली स्वरूप में नहीं, अपनी माता के अन्तःकरण का प्रतिबिम्ब होकर संसार के सामने उपस्थित होता है। माता का अन्तःकरण जितना ही कलुषित होता है उतनी ही कालिमा वह पुत्र संसार के अंधकार-भण्डार में और भरेगा। माता का कलुषित व्यक्तित्व उसके दिव्य प्रकाश को उसी प्रकार ग्रस लेगा जैसे चन्द्रमा को राहु ग्रस लेता है। इसके विरुद्ध माता का अन्तःकरण जितना ही साफ़ होगा उतनी ही मात्रा में बालक का दिव्य प्रकाश उसके शरीर

मन और बचन से प्रस्फुटित होगा। यदि माता का अन्तःकरण निर्मल शीशे के समान स्वच्छ हुआ तो यह दिव्यालोक संसार को उसी प्रकार चकाचौंध कर देगा जिस प्रकार स्वच्छ शीशे के आवरण से गैस या बिजली की रोशनी या बादल-विहीन निर्मल नभ से पूर्ण शशि। अच्छी तरह समझने के लिये हम आपके सामने लालटेन का उदाहरण रक्खेंगे। आप ने देखा होगा जितना ही शीशा साफ़ रहता है उतनी ही सुन्दर रोशनी लालटेन से निकलती है। माता का व्यक्तित्व यही शीशा है और बालक का व्यक्तित्व अन्दर जलती हुई बत्ती। अब आप समझ गये होंगे कि बालक का विकास माता पर कितना आश्रित है।

संसार में लूले, लँगड़े, अन्धे, काने, अपाहिज इत्यादि अङ्ग-भङ्ग या अस्वस्थ बालकों के पैदा होने का कारण कोई दैवी प्रकोप नहीं है। जैसा माता का स्वास्थ्य होगा उसी के अनुसार बालकों के शरीर की भी रचना होगी। माता का स्वास्थ्य बालक के शरीर पर तो अपना प्रभाव डालता ही है माता का मन भी बालक का ही मन हो जाता है। यदि कोई बालक चोर, बदमाश, लुच्चा, या लफङ्गा है तो इसके लिये वह उतना अपराधी नहीं है जितनी उसकी माता। अवगुण अथवा अयोग्यता के कारण जो दंड बालक को मिलता है वही यदि माता को मिलने लगे तो शायद अधिकांश माताएँ ऐसी अयोग्य संतान पैदा करने का साहस न करें।

एक समय का ज़िक्र है; एक बालक अपनी माता को बुरी

तरह से पीट रहा था। माँ ने कहा—"बेटे! क्या तुझे मैंने इसी लिये पैदा किया था?" पुत्र ने क्रोध के साथ उत्तर दिया—"हाँ। मुझे तो नहीं मालूम होता कि मेरे पैदा होने का तुम्हारे हृदय में इसके सिवाय कोई और उद्देश रहा हो।" माँ ने गिड़गिड़ाकर कहा—"ना ना बेटे! लात और घूँसे खाने के लिये माताएँ प्रसवपीड़ा नहीं सहतीं।" बालक ने कहा—"अच्छा तो बताओ कि तुमने मुझे किस लिये पैदा किया था।" माता बड़े गुस्से में थी। उसने कहा—"बेवकूफ! तू ज़बरदस्ती हो पड़ा। जिस समय तू पैदा हुआ था उस समय मेरे दिल में पुत्र की लालसा ही न थी।"

आज कल—यदि मेरा अनुमान गलत नहीं है तो अधिकांश माताएँ ऐसी ही हैं। कदाचित् उनके आमोद-प्रमोद को सहन न कर सकने के कारण उसमें खलल डालने के लिये प्रकृति पुत्र महाशय को उत्पन्न कर देती है। ऐसे पुत्रों की उत्पत्ति का उद्देश्य ही क्या हो सकता है? लहरों के थपेड़े खाते हुए सरोवर में पड़े तिनके के समान वे किसी न किसी घाट लग ही जाते हैं। अपनी जीवन नौका खेने और उसको किसी निश्चित लक्ष्य की ओर ले जाने के लिये उनमें शक्ति नहीं रहती। रहे कहाँ से? माता स्वयं ऐसी शक्तियों के विषय में कुछ नहीं जानती।

बन्ध्या होना अयोग्य संतान उत्पन्न करने से कई गुना अच्छा है। अयोग्य सन्तान उत्पन्न करके परमात्मा के सुन्दर संसार

को दूषित करना ऐसा पाप है जो प्राण देकर प्रायश्चित्त करने से भी नहीं मिट सकता। आजकल संसार में जितनी भी ख़राबियाँ हैं, सब का कारण यही है कि उसमें ऐसे कितने ही प्राणी आ गये हैं जो इस संसार में रहने के सर्वथा अयोग्य हैं। और जब तक संसार में ऐसे अयोग्य प्राणी रहेंगे या आते रहेंगे, संसार का सुधार होना असम्भव है।

जब कोई मनुष्य यह कहता है कि माता स्नेह की मूर्ति है, वह पुत्र को अपने प्राणों से भी बढ़कर मानती है तो उसकी नासमझी पर मुझे बड़ा दुःख होता है। मेरे पड़ोस में एक स्त्री रहती है उसे बहुत दिनों से श्वेतकुष्ट की बीमारी है। एक बार उसके एक लड़की पैदा हुई और वह भी उसी बीमारी की शिकार हो गई। इस बात का उस माता को बड़ा दुःख है। इतना होते हुए भी वह एक पुत्र के लिये लालायित है। वह यह जानती है कि पुत्र भी श्वेतकुष्ट का शिकार हो जायगा। फिर भी वह इसके लिये चिन्तित है। क्या यही मातृ-स्नेह है? यदि पुत्र संसार में आकर रोगी हो जायगा और नाना प्रकार के दुःख और अपमान सहेगा तो उसका न आना ही अच्छा है। सच्चा मातृप्रेम पुत्र को संसार में दुःख और पीड़ा सहने के लिये नहीं बुला सकता। जिस प्रकार मनुष्य में राज्याधिकार की अभिलाषा चाहे वह उसके योग्य हो या नहीं, स्वाभाविक है, उसी प्रकार माता बनने की इच्छा भी स्त्री का एक साधारण स्वभाव है। इस स्वभाव को सुधारना चाहिये; क्योंकि यह अनुचित है। केवल पुत्र उत्पन्न कर देने से ही

कोई स्त्री माता नहीं हो सकती। माता तो वही है जो पुत्र को मनुष्य और मनुष्य को देवता बना दे।

लोग कहते हैं, माता अपने पुत्र को क्या नहीं दे सकती? मैं इससे सहमत नहीं हूँ। मैं तो यही कहूँगा कि माता पुत्र का क्या नहीं अपहरण कर सकती? पुत्र एक ईश्वरीय रत्न है और उसमें सभी ईश्वरीय गुण मौजूद है। अयोग्य माता पुत्र में इन गुणों का विकास नहीं होने देती। क्या यह अपहरण नहीं है? योगियों का मत है कि जो जीव जन्म लेता है और मरता है वह आज़ाद नहीं है। इस मत के अनुसार तो जन्म देते ही माता पुत्र या कन्या की सारी आज़ादी छीन लेती है। वह एक जीव को, जो किसी दिव्यलोक में विचरण करता रहा होगा, बुलाकर मृत्युलोक में क़ैद कर देती है। आज़ादी का यह अपहरण भी क्षम्य हो सकता है यदि माता पुत्र को इस योग्य बना दे कि वह इस जन्म के पश्चात् सदैव के लिये मोक्ष प्राप्त कर ले। परन्तु इसका ध्यान कितनी माताएँ रखती हैं? ऊपर से एहसान लादती हैं—"तुमको नौ मास उदर में रक्खा! तुम्हारा मल-मूत्र साफ किया, तुमको पाल-पोसकर बड़ा किया।" खूब!! क्यों उदर में रक्खा? जो माताएँ ऐसा कहती हैं, मेरी समझ में उनसे बढ़कर स्वार्थी इस संसार में और कोई नहीं है; क्योंकि ऐसा कहकर वे पुत्र को ऐसे बन्धनों में फँसा देती हैं जिससे उसका निकलना कठिन हो जाता है। मुझे एक वकील की बात याद है। वर्त्तमान असहयोग आन्दोलन में वे अत्यन्त इच्छा रखते हुए भी भाग न ले सके,

क्योंकि वकालत छोड़ने पर बूढ़ी माता को मलाई का प्रबन्ध न हो सकेगा और पुत्र के पकड़ जाने पर वह किसका मुँह देखकर अपना बत्तीसवाँ दाँत उखाड़ेगी ? ऐसी माताएँ पुत्रों के मार्ग में रोड़े अटकाने के सिवाय और क्या सहायता कर सकती हैं ! यहाँ एक आदर्श माता का उदाहरण भी दे देना अनुचित न होगा।

जब रूस और जापान में युद्ध छिड़ा था तो एक विधवा जापानी महिला जिसके नौ पुत्र युद्ध में मारे गये थे, दसवें को युद्ध की तैयारी करते देख रो पड़ी ! जब पुत्र ने रोने का कारण पूछा तो माँ ने कहा—"मैं इसलिये रो रही हूँ कि मेरे दो-चार पुत्र और न हुए जिन्हें मैं मातृभूमि के हित प्राण देने के लिए तेरे पश्चात् युद्ध क्षेत्र की ओर रवाना करती।" यथार्थ में ऐसी ही माताओं के बल पर देश और जाति का कल्याण निर्भर है।

माता का उत्तरदायित्व आसान नहीं है। आदर्श माता बनने के लिये तपस्या की आवश्यकता है। तपस्या से जब शरीर और मन दोनों विकार-रहित हो जाते हैं तब जो पुत्र उत्पन्न होता है, वही मनुष्य है। उसी मनुष्य को उत्पन्न करनेवाली स्त्री को माता कहते हैं और भारत का उद्धार ऐसी ही माताओं के हाथ में है।

मीठी चुटकी

[लेखक—"त्रिमूर्ति" अर्थात् पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी, श्री "वर्म्मा" तथा बाबू शम्भूदयाल जी सकसेना, साहित्यरत्न]

अब तक ऐसा सुन्दर और सरस उपन्यास आपने शायद ही पढ़ी हो। देखिए, इसके विषय में पत्र-पत्रिकाओं तथा विद्वानों की सम्मतियाँ कैसी अच्छी है! हिन्दी में अभी तक ऐसी प्रशंसा किसी उपन्यास की नहीं हुई हैं। देखिये—

माधुरी—यह उपन्यास सुःखान्त है। लिखने का ढंग बड़ा अच्छा है। कहानी का विकास सरल और स्वाभाविक है। पुस्तक प्रारम्भ करके यही जी चाहता है कि समाप्त करके ही इसे बन्द करे।

महारथी—तीन-तीन साहित्य-वीरों का मिलकर इस प्रकार के सरस और सामाजिक क्रान्तिकारी उपान्यास को लिखने का प्रयत्न हिन्दी-साहित्य के लिए गौरव का विषय है।

प्रताप—अच्छा लिखा गया है। मुझे बहुत पसन्द आया। मैं ललित साहित्य-प्रेमियों से अनुरोध करता हूँ कि वे इसे पढ़ें और आनन्दान्वित हों।

आर्यमित्र—मीठी चुटकी में मौलिकता है, नवीनता है और साथ ही इसमें विशेषता इस बात की है कि यह तीन लेखकों के सम्मिलित प्रयत्न का सुफल है। कथानक अपने ढंग का अनूठा है। भाषा सरस और सजीव है प्रेमचर्चा सुरुचि पूर्ण है। सब प्रकार की सुन्दर और मौलिक कृति से हिन्दी-साहित्य-मन्दिर की शोभा बढ़ाने के लिए उनका प्रयत्न स्तुत्य है।

विश्वमित्र—चरित्र-चित्रण निर्दोष एवं उपदेशमय है। ऐसे उपन्यासों से हिन्दी-साहित्य का गौरव बढ़ता एवं पाठकों में सुरुचि का संचार होता है।

कर्मवीर—पुस्तक का कथानक सामयिक है। यह उपन्यास नवीन और प्राचीन का अच्छा संयोग दिखाता है। पुस्तक की भाषा और वर्णनशैली मार्जित और शृंखलाबद्ध है। पत्रों का चरित्र-चित्रण स्वाभाविक और धारावाहिक रूप में किया गया है।

स्वदेश—स्त्री-स्वातन्त्र्य तथा स्त्री-कर्तव्य की प्राचीन और नवीन दशाओं का निरुपण करते हुए लेखकोंने आधुनिक समाज की मनोवृत्ति का .खूब विश्लेषण किया है। मनोरञ्जक, शिक्षाप्रद और सुरुचिपूर्ण है।

साहित्याचार्य्य परिडत पद्मसिंहजी शर्म्मा—कहानी मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद है। वर्णन में धारावाहिकता है। भाषा सुन्दर और भाव भव्य हैं। पुरुष-निरपेक्ष पूर्ण स्त्री-स्वातन्त्र्य के के प्रबल पक्षपाती महापुरुष इसे पढ़कर ख़ासी 'इबरत' हासिल कर सकते हैं। देवियाँ भी अपने विचारों को दिव्य बना सकती हैं।

सुप्रसिद्ध कहानीलेखक श्रीसुदर्शन—बहुत बढ़िया उपन्यास है। लिखने की शैली अत्युत्तम है और पूर्णरूप से स्वाभाविक है। हिन्दी-संसार को इस समय ऐसे ही साहित्य की आवश्यकता है।

प्रसिद्ध गाल्पिक श्री पं० विश्वम्भरनाथ शर्म्मा कौशिक—उपन्यास का विषय अच्छा है। इससे उन स्त्रियों को अच्छा पाठ मिलता है जो बिना समझे-बूझे और परिणाम पर विचार किये स्वतंत्रता प्राप्त करने की इच्छुक रहती हैं। इस युग में, जब कि प्रत्येक अर्द्ध शिक्षित स्त्री स्वतंत्र होने के लिए अधीर रहती हैं, यह उपन्यास अच्छा पथ-प्रदर्शक हो सकती है।

कागज़, छपाई सफ़ाई और जिल्द बहुत सुन्दर, मूल्य १॥)

पता—मैनेजर साहित्य-मन्दिर, दारागंज, प्रयाग।

मुसकान

उपन्यास कैसा है, इस विषय में देखिये विद्वानों तथा पत्रों की सम्मतियाँ—

साहित्याचार्य्य पं० चन्द्रशेखरजी शास्त्री

"इस पुस्तक में एक मधुर कल्पना के सहारे जो चित्र हमारे सामने खड़ा होता है, वह है सूत्र; उसे जीवन-सूत्र भी कहा जा सकता है। विजय ललिता के प्राण बचाते हैं; एलिस विजय को बचाने के लिये कालापानी जाती है और ललिता फाँसी पर चढ़कर एलिस को छुड़ाती है। कितना ऊँचा यह प्रतिदान है! यही तो हम इस समय अपने समाज में देखना चाहते हैं।

मैं अपने मित्र वाजपेयीजी की; इस सुन्दर कल्पनाके लिए और उसको साङ्गोपाङ्ग ठीक उतार देने के लिए, प्रशंसा करता हूँ।"

यशस्वी कहानी-लेखक श्रीसुदर्शन

मुसकान नामी उपन्यास देखा; बहुत अच्छा है। भाषा, भाव और चित्रण तीनों प्रशंसनीय हैं। अच्छी कहानी का यह सब से बड़ा गुण है कि वह कहानी मालूम न हो। ऐसा मालूम हो, जैसे कोई सच्ची घटना है, बनावट की गन्ध भी न हो। इस पुस्तक में यह बात पूर्ण रूप से विद्यमान है।

स्वदेश—हिन्दी में वाजपेयीजी की भाषा की विशेषता है, वे निस्सन्देह शरत् बन रहे हैं। पुस्तक में दो नवयुवती प्रेममयी सुन्दरियों के जिस आदर्श त्याग का वर्णन है उस त्याग की महत्ता के बारे में बहुत पहले महात्मा पेरीक्लीज़ ने कहा था—कोई चाहे जितने पाप करे किन्तु वह जब देश की स्वतन्त्रता के लिए अपने को समर्पण कर देता है तब उसके सब पापों का तुरन्त प्रक्षालन हो जाता है। जान में या अनजान में वाजपेयी जी ने भी इसी सिद्धान्त को सिद्ध कर दिया है। और सिद्ध कर दिया है बहुत सुन्दर ढंग से। कुछ

लोगों का कहना है कि इस दृष्टि से यह पुस्तक उन सब पुस्तकों से अच्छी हुई है जो अब तक वाजपेयी जी ने लिखी हैं।

भारत—यद्यपि इस पुस्तक का कथानक केवल एक मधुर कल्पना के आधार पर ही बाँधा गया है, पर भाषा में इतनी सजीवता, इतना ओज और इतनी मौलिकता है कि पढ़नेवाला इसे काल्पनिक घटना स्वीकार करने को तैयार नहीं होगा। कथानक सुन्दर शुद्ध प्रेम का प्रतिदान एवं शुद्ध पवित्र चरित्र का चित्र बड़ी ही सजीवता से खींचा गया है। सुन्दर और हृदयग्राही दृश्य दिखलाकर वाजपेयीजी ने समाज के सामने एक ऊँचा आदर्श रख दिया है।

आर्यमित्र—एक शब्द में पुस्तक युवक-कामना से लबालब भरा प्याला है। ऐसी सुन्दर पुस्तक उपन्यास-जगत् में अपना निजी स्थान रखती है।

विज्ञान—श्रीवाजपेयी जी की सुन्दर-सुन्दर छोटी छोटी गल्पों से साहित्यजगत् परिचित है। उनके इस उपन्यास को पढ़ने से शरत् बाबू के बंगाली उपन्यासों की याद आ जाती है। भाषा आडम्बर शून्य और स्वस्थ है। जिस प्रकार प्रेमचन्दजी अपने बड़े-बड़े उपन्यासों और बड़ी-बड़ी गल्पों के कारण साहित्य में अमर रहेंगे। उसी प्रकार वाजपेयी जी भी छोटी-छोटी गल्पों तथा उपन्यासों को लिखकर अपना नाम अवश्य चिरस्थायी कर जायँगे।

कर्मवीर—लेखक ने ललिता का चरित्र इतना उज्ज्वल खींचा है कि यही प्रतीत होने लगता है कि मुसकान में नायक नहीं नायिका है। भाव, भाषा और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से उपन्यास उत्कृष्ट श्रेणी का तो है ही, परन्तु राष्ट्रीयता की सामयिक छाप लिये हुए होने के कारण वह और भी आकर्षक बन गया है। मूल्य सजिल्द प्रति का १=)

पता—साहित्य-मंदिर, दारागञ्ज, प्रयाग।